Chapter-2

द्वितीय अध्याय

साठोत्तरी हिन्दी एवम् गुजराती के प्रमुख सामाजिक उपन्यासों में मध्यमवर्ग

साठोत्तरी उपन्यास : तात्पर्य और पृष्ठभूमिः

साहित्य की अभिव्यक्ति विभिन्न साहित्य की विधाओं में प्रस्तुत होती रही है–जीवनी, संस्मरण, आत्मकथा, रिपोर्ताज, निबंध, समालोचना, कहानी और उपन्यास आदि। उपन्यास विधा की लम्बी परम्परा रही है और यह सबसे प्रचिलत एवम् लोकप्रिय भी रही है। इसेक द्वारा समाज की आम जनता की विविध समस्याएँ, जन–रीतियाँ, रस्मो–रिवाज, अंध–विश्वास आदि का हूबहू चित्रण करने की कोशिश की जाती है। दर्पण की तरह समाज में व्याप्त कुरीतियों एवम् भ्रष्टाचार को खुला करता है। कहना है– ''उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास, सामाजिक यथार्थ, नए मूल्यों, सभ्यता, संस्कृति, चिंतन आदि में अधिक सशक्त ढंग से अभिव्यक्त करने में कारगर साबित हो रहा है। इसलिए यह विधा केवल महत्वपूर्ण ही नहीं, बल्कि अधिक लोकप्रिय भी साबित हो रही है।''[1]

वस्तुतः साठोत्तर का अर्थ है साठ के बाद अर्थात् इस्वी सन् 1960 के बाद। साठोत्तर उपन्यास 1960 ई. के बाद लिखे गये उपन्यासों के लिए प्रस्तुत होता है। साठ के बाद का दशक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दृष्टि से एक बदलाव का समय रहा है। साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के बाद का कुछ समय प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित दौर रहा। स्वतंत्रता के लिये जो सपने आम आदमी ने देखे थे, और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक सुखद भविष्य की जो कल्पना की थी – वह धराशायी हो गयी। सरकार बदली लेकिन रवैया नहीं बदला। शोषण का रूप बदला। यह एक मोहभंग था। चीन और भारत के बीच युद्ध ने भारतीय समाज के सामने भी भाईचारा, शांति, अहिंसा की परिभाषा को बदल दिया। पाश्चात्य देशों ने दो महायुद्ध तो झेले ही थे। उसने मानवीय विचारधारा को झकझोरकर रख दिया था। ''युद्ध की विभीषिका ने व्यक्ति के मानस में एक हलचल उत्पन्न कर दी। मनुष्य एक त्रासदी से गुजरने लगा। इन सबका प्रभाव मनुष्य की जीवन पद्धति पर पड़ा। परिणामस्वरूप उसकी पुरानी मान्यताएँ टूटने लगीं। धर्म के प्रति उसकी आस्था और विश्वास की नींव हिलने लगी, धर्म का रथचक्र टूटने

लगा, उसका स्थान विज्ञान ने ग्रहण कर लिया। इस प्रकार मनुष्य का जीवन युग–सापेक्ष क्रमिकता से उद्भुत होकर यन्त्रवत् हो गया। जड़ता टूटने लगी। वह गत्वरता की तरफ उन्मुख होने लगा। साहित्य पर इन सबका प्रभाव पड़ा।''[2] कविता के क्षेत्र में अकविता, भूखी पीढ़ी की कविता, दिगम्बरी कविता ब्रिटनिक कविता, दादावारी कविता, धनवारी कविता, ताजी कविता, टूट की कविता जैसे काव्यान्दोलन चले, जिसे एक शब्द में आलोचकों ने किसिम–किसिम की कविता अथवा साठोत्तरी कविता कहना प्रारंभ किया।''[3] किन्तु ''उपन्यास के क्षेत्र में अकविता की तरह अउपन्यास नाम अथवा नई कविता या नई कहानी की तरह नया उपन्यास नाम देना पसन्द नहीं किया गया, इसलिए 'आज का उपन्यास' जैसा शब्द देना समीचीन होगा।''[4] तात्पर्य यह कि 'साठोत्तर उपन्यास साठोत्तर कविता की तर्ज पर लिया हुआ शब्द है।''[5]

साठोत्तरी भारतीय समाज की राजनैतिक रूपरेखाः

साठोत्तरी भारतीय समाज में मूल्यहीनता, अनैतिकता, असमानता, आर्थिक विषमता, जातीय, धार्मिक कट्टरता, राजनीतिक विद्रुपता और अराजकता की स्थिति चौतरफा व्याप्त रही। ''साठोत्तर भारत में कुछ इस प्रकार की घटनायें घटित हुईं, जिनमें पूरा देश प्रभावित हुआ। सर्वप्रथम उन पर एक दृष्टि डालना उचित रहेगा। सन् 1962 में चीन से, सन् 1964 में और सन् 1971 में पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध के कारण देश की अर्थव्यवस्था चरमरा उठी। इनके साथ ही बंगलादेश के लाखों शरणार्थियों का भार भी देश को उठाना पड़ा। महँगाई और भ्रष्टाचार के पंजे में फँसकर जनता और कसमसाने लगी। 1974–75 में गुजरात और बिहार में छात्र आन्दोलन हुए। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में युवावर्ग में 'सम्पूर्ण क्रान्ति' द्वारा समाज से दुराचार, भ्रष्टाचार, निरंकुशता और अराजकता की स्थिति को समाप्त करने का प्रयास किया गया। सन् 1975 में लगे आपातकाल के मध्य हुई ज्यादतियों के कारण जनसमुदाय उद्वेलित हो उठा। 1977 के चुनाव में श्रीमती इन्दिरा गांधी और उनकी काँग्रेस पार्टी को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। 1977 में संगठित विपक्षी दल के हाथों में पहली बार देश की बागडोर आयी, जिसे सफलतापूर्व सम्भाल न सकने के कारण 1980 में मध्यावधि चुनाव हुए जिसमें श्रीमती गांधी और उसकी पार्टी को सत्ता पुनः प्राप्त हुई। राजनीतिक दाँव–पेंच के चलते पंजाब समस्या की

जटिलता, प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की (1984 में) हत्या के पश्चात् भी समाप्त नहीं हुई। तत्पश्चात् की इन्दिरा गाँधी के पुत्र राजीव गाँधीने प्रधानमंत्री पद को सुशोभित किया। 1985 श्री गांधी के उत्कर्ष का वर्ष था। भारतीय जनता को इस नये और अति उत्साही 'मिस्टर क्लीन' की छविवाले प्रधानमंत्री से असीम आशायें थीं। सन् 60 से 85 तक की इन स्थितियों का तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक संरचना एवं युवावर्ग पर विशेष प्रभाव पड़ा।''[6] समाज की सारी परिस्थितियों का चित्रण साहित्यकार अपने साहित्य के अंतर्गत करने की कोशिशि करता है। 1960 के बाद जो भी परिस्थितियाँ भारतीय समाज में उद्‌भव हुई इन सबका प्रभाव हमें साठोत्तरी उपन्यास के अतंर्गत देखने को मिलता है।

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज की वस्तु स्थिति का प्रतिबिंब साहित्य में पड़ना स्वाभाविक है। हिन्दी उपन्यासों में साठोत्तर समाज में व्याप्त विषमता, विसंगति, मूल्यहीनता, अवरसरवादिता, जातीय कट्टरता, धार्मिक संकीर्णता, असहिष्णुता तथा अराजकता को किसी न किसी रूप में चित्रित किया है। भारतीय सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन की कड़वी सच्चाईयाँ उपन्यासों की विषयवस्तु बनीं। परम्परागत नैतिक प्रतिमान टूटने के फलस्वरूप समाज में विद्यमान अनैतिकता, उच्छृंखलता, अनास्था, त्रासदीपूर्ण मध्यमवर्गीय जीवन, महँगाई, बेरोजगारी, यौन चित्रण एवं यौनजनिक कुण्ठायें कई कथाकारों के प्रिय विषय रहे। ''साठोत्तर उपन्यासों में कुछ उपन्यास आधुनिकता के बोध की अभिव्यक्ति और संरचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कुछ उपन्यास, मानवीय स्थिति, उसकी लाचारी, अभिशप्तता तथा नियति को अनुभूति एवं संवेदना के स्तर पर उजागर करते हैं। आधुनिकतावादी उपन्यासों के दौर के समानांतर ऐसे उपन्यास भी लिखे जा रहे थे जो जन–जीवन तथा समाज की समस्याओं, मूल्यों को लेकर जूझ रहे थे। इन उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं को उठाया गया है।''[7]

साठोत्तर उपन्यास की सामाजिक रूपरेखा (विशेषता):

आधुनिकता के बोध ने साठोत्तर उपन्यासों को वस्तु और शिल्प दोनों आधारों पर नवीनता लाने का सफल प्रयत्न किया। साठोत्तर उपन्यासकार परम्परागत रुढ़ियों तथा संस्कारों के प्रति

विक्षुब्ध दिखाई पड़ता है। उसका उपन्यासात्मक संवेदन उसी अनुपात में परम्परा से मुक्त और निःसंग भी। परिवर्तित सौन्दर्यबोध के कारण आज का उपन्यासकार पिछली परम्पराओं को नकार कर अपना लगभग पृथक् मार्ग खोजने में रत है।

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासकार कथावस्तु, पात्रसृष्टि, मनोवैज्ञानिकता तथा कला की दृष्टि से संरचनात्मक प्रयोगवाद का पक्षपाती है। साठोत्तर उपन्यासकार यह नहीं सोचता कि सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से क्या कुरूप है, क्या सुन्दर है, क्या ग्रहणीय है, क्या अग्रहणीय है। उसका अभिप्राय मात्र जीवन के अर्थ मर्म तक पहुँचना है। आधुनिक भाव–बोध के लेखक से यह तात्पर्य नहीं है कि वह मात्र जीवन की नग्नता, नीरसता और जुगुप्सा का ही चित्रण करे।

साठोत्तर उपन्यासकार यथार्थ का चित्रण करता है। आधुनिकता के भाव–बोध में भी मूलतः यथार्थ ही है। किन्तु यथार्थ का तात्पर्य यह नहीं होता कि वह जीवन का भण्डाफोड़ करे। साठोत्तर उपन्यासकार उपन्यास के ऐसे आकार की तलाश करता है, जो जीवन के सच्चे प्रतिमानों का सह्य प्रारूप बन सके। साठोत्तर उपन्यासकार मनुष्य के आन्तरिक जगत की वास्तविकता को मूर्तिमान करता है। साठोत्तर उपन्यास यथार्थ अनुभव से युक्त मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। साठोत्तर हिन्दी उपन्यासकार अपने जीये हुए परिवेश और उसके सूक्ष्म तत्वों को रूपायित करता है। इसलिए उसकी सोच अब पुराने मानदण्डों को स्वीकार नहीं करती। साठोत्तर उपन्यासकार ने जीवन–सन्दर्भो को नयी दृष्टि से देखा। परिणामस्वरूप साठोत्तर उपन्यासकार की रचना प्रक्रिया कथ्य और शिल्प दोनों आधार पर बदल गयी।

''साठोत्तरी साहित्य की विशेष चर्चा हो रही है, उसका कारण भी यही है कि उपर्युक्त सामाजिक, राजनीतिक, वैश्विक स्थितियों का स्वानुभूत, निरपेक्ष, अरोमानी, यथार्थमूलक आंकलन जितना इधर हुआ है या हो रहा है उतना पहले कभी नहीं हुआ। आधुनिक जीवन की विरुपताओं, विसंगतियों एवं विभीषिकाओं को साठोत्तरी रचनाकारों ने वैयक्तिक स्तर पर भोगा है और उसे कलागत निरपेक्षता एवं निर्ममता के साथ अपने उपन्यासों में अंकित किया है। ये उपन्यास अपने प्रारम्भिक रोमानीपन, भावुकता, नैतिकता, उपदेशवादिता आदि दूषणों को छोड़ता हुआ यथार्थ के नये आयामों की सृष्टि में आगे बढ़ रहा है।''[8]

साठोत्तर उपन्यासकार के केन्द्र में मध्यमवर्गीय नारी मूल बिन्दु हो गयी। नारी की दुर्दशा

का चरित्रक्ष सबसे अधिक किया है। जैसे वेश्या जीवन, विधवा नारी की समस्या, दहेज–अनमेल विवाह और बहुपत्नी प्रथा की समस्या, राजनीति में नारी, नारी घर और बाहर, नारी–समानता आदि बातों को उपन्यास के माध्यम से उठाने का प्रयास किया गया है। इसके अलावा साठोत्तर उपन्यासकारों ने मध्यमवर्ग में प्रवर्तमान संयुक्त परिवार की प्रथा और उसके कारण उद्भवित होती हुई विभिन्न समस्याओं, जाति व्यवस्था, अछूत समस्या और वर्ण व्यवस्था के द्वारा प्रवर्तमान विविध समस्याओं का बखूबी वर्णन किया है।

साठोत्तर उपन्यासों में वैयक्तिक समस्यामूलक अनुभवों को सामान्य मानव के अनुभव के स्थान पर अत्यधिक महत्वपूर्ण समझकर अभिव्यक्त किया गया है। इसलिए उपन्यासकार ने अपने व्यक्तित्व से मिलते–जुलते पात्र का निर्माण किया है, जिसके माध्यम से वह अपनी बात कहलाता है। इन उपन्यासों में नए प्रकार के पात्र और नई तरह की भूमिका का समावेश हुआ है। साठोत्तर उपन्यासों में परम्परागत, परिचित या जाने–पहचाने पात्र का प्रवेश न होकर ऐसे पात्रों का प्रवेश हुआ है, जिनके क्रिया–कलाप और व्यक्तित्व दुर्बोध है।

साठोत्तरी मध्यमवर्ग का विस्तारः

हिन्दी कथा–साहित्य की केन्द्रीय धारा की ओर मध्यवर्ग का बार–बार लौटना एक ऐतिहासिक महत्व की घटना है। इस अर्थ में ऐसा मानना गलत नहीं है कि उपन्यास मध्यमवर्गीय जीवन के विस्तार की विधा है। 'भाग्यवती' से लेकर प्रेमचंद के 'निर्मला' एवम् 'गोदान' से आगे बढ़ते हुए 'आपका बंटी' तक सीमित न होकर 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'चित्तकोबरा' तक भारतीय मध्य वर्ग का विस्तार अपने आप में एक रोचक एवम् रसप्रद विषय है।

प्रेमचंद ने जिस भारतीय मध्यवर्ग का चित्रण अपने उपन्यासों में किया था वह स्वरूप और विस्तार साठोत्तरी के मध्यवर्ग से भिन्न था। सर्वप्रथम प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग की झूठी शान, मर्यादा तथा आदर्श को प्रथम बार प्रवेश दिया है। 'निर्मला' में मध्यमवर्ग की दहेज प्रथा और अनमेल विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं के साथ मध्यमवर्गीय परिवार का चित्र उभरकर सामने आया है। 'गबन' का नायक रमाकान्त ऐसे ही मध्यमवर्ग का जीता–जागता व्यक्ति है। 'गोदान' में आकर प्रेमचंद ने होरी के रूप में निम्न मध्यवर्ग का नायकत्व स्वीकार किया है।

होरी को खेतों की, बच्चों की और दरवाजे पर बाँधने के लिए गाय की चिन्ता सताती है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का चेतन अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए ट्यूशन करता है, दूसरों के नाम से पुस्तकें लिखता है ताकि वह जीवन को सहज ढंग से जी सके। अन्य उपन्यासों के ऐसे संघर्षशील नायक अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। आदर्शों, परम्पराओं तथा आभिजात्यता के विरुद्ध जिहाद छेड़ देने वाले नायकों का प्रादुर्भाव नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, भगवतीप्रसाद गुप्त, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

साठोत्तरी व्यक्तिवादी उपन्यासों में मध्यवर्ग का प्रवेश कुछ अलग ढंग से हुआ है। इन उपन्यासों में मध्यवर्गीय समाज की कुण्ठाएँ, यौन समस्या तथा घुटन का वर्णन अधिक है। इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासों में इसका स्वरूप दिखायी पड़ता है। 'मध्यवर्ग के प्रवेश ने उपन्यास को एक सर्वदा नवीन स्वरूप प्रदान किया है। लाला श्री निवासदास का अनगढ़ प्रयोग प्रेमचन्द्र का सुनिश्चित ढाँचा, अज्ञेय का जीवन प्रेरक निर्बन्ध रूप–विधान, धर्मवीर भारती की नई टेकनीक सभी मध्यवर्गीय समाज की विशेष स्थितियों के प्रतीक हैं।''[9]

साठोत्तरी उपन्यासों में देखने को मिलता मध्यमवर्ग अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में बड़ी तेजी से बदलता हुआ दीख पड़ता है। उसके भीतर का अंदरुनी अन्तर्विरोध तीखा हो गया है और खाइयाँ बढ़ती जा रही हैं। इस बदलते हुए परिदृश्य के भीतर अन्तराल पैदा हो रहे हैं और जीवन के अनाहत नैरंतर्य को हर स्तर पर बाधित करने लग गए हैं। ऊपर से अव्याहत लगनेवाली परिस्थिति भीतर से टुकड़े–टुकड़े होकर बिखर रही है। साठोत्तरी मध्यमवर्गीय व्यक्ति इतिहास के अन्तराल में डूबता जा रहा है। प्रत्यक्षीकरण और बोध की यह नई समस्या साठोत्तरी उपन्यासकार को मजबूर करती है कि वह मध्यमवर्गीय व्यक्ति समुदाय के निरंतर बदलते हुए जीवन की पुरानी पहचान को फिर से ताज़ा करे। साठोत्तरी उपन्यास इतिहास के भीतर चाहे हम मानवीय चेतना की प्रक्रिया को घटनाओं से जान लें मगर औपन्यासिक कृति में घटनाएँ एक स्तर के बाद निर्वैयक्तिक होकर उपन्यासकार के लि अर्थहीन हो जाया करती है। साठोत्तरी उपन्यास मध्यवर्गीय व्यक्तिसंवेदना के बीच इतिहास के सत्व को ठोस सामाजिक अन्तःक्रिया में उपलब्ध करने की चेष्टा करता है। छठे दशक में भारतीय मध्यवर्ग का विस्तार जिस अन्तर्विरोधों का शिकार है और जीवन के जिन स्तरों पर आन्दोलित बाधित हो रहा है उसे परिवर्तन के किसी विशेष केन्द्र में

देखना अपर्याप्त होगा। ''आज़ादी के बाद भारतीय मध्यवर्ग का आन्तरिक संघटन ही नहीं बदलता इसी क्रम में उसका चरित्र भी बदल गया। वर्ग–संघर्ष और जन आन्दोलनों से टूटा हुआ यह मध्यवर्ग या तो अवसर की राजनीति का हिस्सा हो गया या फिर पूरी जीवन प्रक्रिया में केला होता हुआ आत्मनिर्वासित हो गया। इस बाहरी फैलाव के बीच व्यक्ति की निजता मिटती चली गई। उसकी पहचान समाप्त हो गई। बड़े स्तर पर मध्यवर्ग एक आत्म–संकट का शिकार हो गया। इस अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्तियों के जीवन में उतारना साठोत्तरी उपन्यासकारों की कथा–रचना का मूल लक्ष्य है। ''मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय समाज में दिन पर दिन राजनैतिक चेतना बढ़ती जा रही है। जहाँ भी दो चार व्यक्ति मिलकर और बैठकर जब चर्चा प्रारम्भ करते हैं तो अन्त में राजनीति पर ही आती है।''[10] इस बात पर डॉ. हेमराज निर्मम का कथन दृष्टव्य है – ''मध्यवर्ग में राजनीतिक चेतना बहुत है। वह समाज और सरकार के हर कार्य को राजनीतिक दृष्टि से देखने लगा है। समाज सेवा तक को राजनैतिक रूप दे दिया जाता है।''[11] सम्बन्धों के बदलते हुए यथार्थ की अनगिनत विशिष्ट मुद्राएँ ग्राम, शहर तथा महानगर के त्रिस्तरीय विस्तार में सन् 60 के बाद के उपन्यासों के प्रकाशन के साथ मुखर हो रही है। ये मुद्राएँ निम्न–मध्यवर्गीय समष्टिमें आर्थिक स्तर पर किए जा रहे सघर्ष की पृष्ठभूमि में उभरी है। इसमें शिक्षिता नारी के सम्बन्धों का एक टूटता–बनता और बिखरता संसार है। पुरुष इस संसार में अधिकाधिक भावनाहीन होता चला गया है। व्यवस्था–तंत्र और नौकरी–पेशा किले–बन्दियों की विरुद्ध उसकी लड़ाई और अस्तित्व की कठोर अरक्षा ही इसका मूल कारण है। आर्थिक शोषण की एक व्यापक भूमिका में से गुजरते हुए और अवसरवादिता के हथकण्डों से लड़ते–लड़ते थक कर समझौतावादी मुद्राओं ने उसे जड़ और भावनाविहीन कर दिया है। परिवार को समेटने की आकांक्षा और जीवन को सुखी बनाने की विवशता ने उसे विडम्बनात्मक भंगिमा में परिवार से दूर और तथाकथित सुखी जीवन के संदर्भो से बहुत परे ला पटका है। आज का हिन्दी उपन्यास इस व्यापक दंश को अभिव्यक्ति देने के लिए रचनात्मक स्तर पर क्रियाशील है और प्रायः यही कारण है कि सम्बन्धों की बदलती हुई मूल्यगत एवं मूल्यहीन सृष्टि को आकलित करने के प्रयास में अनगिनत उपन्यास–रचनाएँ तीव्रता के साथ प्रकाश में आई हैं। जीवन की भ्रमजालिक नियति की पहचान इनका प्रमुख दृष्टि–बिन्दु आभासित होता है। सम्बन्धों का यह संसार केवल स्त्री–पुरुष, पति–पत्नी अथवा

प्रेमी–प्रेमिका का संसार ही नहीं है,प्रत्युत् इसीक पकड़ समूचे मानवी–संदर्भ, मानवी स्थिति एवं मानवी परिप्रेक्ष्य पर है।''[12] इन्हें व्याख्यायित करने के लिए आज के साठोत्तरी उपन्यासकार को अनुभवों के व्यापक धरातलों पर से होकर गुजरना पड़ा है और कई बार 'अनुभूति की प्रामाणिकता' के प्रकाशन के लिए वह अपने ही जीवन की कथाएँ कहता और जुटाता चला जाता है।

साठोत्तरी समय ने भारतीय मध्यवर्ग को अजीब ढंग से आत्म विभाजित कर दिया है। उसकी बाहरी भीतरी बनावट में ही एक ऐसी असंगति है जिसे लक्ष्य करना कोई बड़ी गंभीर चीज नहीं है। मगर इस असंगति थवा आत्म विरोध की वास्तविक पृष्ठभूमि में प्रवेश करना उपन्यासकारों के लिए संभव नहीं है। लेकिन इसके बावजूद भी उन्होंने मध्यवर्ग की आत्मविभाजित असंगति को पूरे कथा–विस्तार में ज्ञापित करने का प्रयत्न किया है।

साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में भारतीय मध्यवर्ग से संबंधित एक और समस्या का उल्लेख होता है – सेक्स भावना। मध्यवर्ग और निम्न वर्ग में आज काम भावना या सेक्स भावना एक भयंकर प्रश्न बना हुआ है। सेक्स के परिणामस्वरूप से अनेक प्रकार की विकृतियाँ समाज में देखने को मिलती हैं। यदि सेक्स की तृप्ति न हो तो प्रायः मनुष्य मानसिक द्वन्द्व में उलझता जाता है। और अनेक प्रकार की विकृतियों से गुजरने लगता है। कामजनित कुण्ठाओं का निराकरण करते हुए एक स्थान पर कहा गया है कि– ''चिरकाल तक दमित काम वासना से तथा उदात्तीकरण का कम प्रयत्न करने के कारण युवक–युवतियाँ एकांतप्रिय, अन्तर्मुखी और कभी–कभी असामाजिक होने लगते हैं।''[13]

निम्नलिखित साठोत्तरी उपन्यासों में उपर्युक्त भारतीय मध्यवर्ग की विविध बाबतों का विवरण देखने को मिलता है। मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे', 'न आनेवाला कल', 'अंतराल', कमलेश्वर का 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'काली आँधी', 'डाक बंगला', 'तीसरा आदमी', 'लौटे हुए मुसाफिर', नरेश मेहता का डूबते मस्तूल', 'धूमकेतुः एक श्रुति', 'यह पथबंधु था', 'दो एकान्त', श्री लाल शुकल का 'राग–दरबारी' निर्मल वर्मा का 'वे दिन', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', उषा प्रियंवदा का 'रूकोगी नहीं, राधिका', भीष्म साहनी का 'झरोखे', 'कड़ियाँ', श्रीकांत का 'दूसरी बार', राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई', रमेश बक्षी का 'अठारह सूरज के पौधे', उषा प्रियंवदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी', भगवती बाबु का 'सबहिं नचावत राम गोसाई' आदि।

उषा प्रियंवदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' प्रयोगवादी एवम् उनका प्रथम उपन्यास है। उनके उपन्यास में हमें मध्यवर्गीय नारी जीवन के परिवर्तित आयामों की करुण अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। आधुनिक जीवन की यह एक बड़ी विडम्बना है कि हम नहीं चाहते, वही करने को विवश हैं। उपन्यास की नायिका सुषमा इसी विडम्बना की शिकार है। उषा जी ने इस उपन्यास में निम्न मध्यमवर्ग को लिया है।

साठ के दशक के प्रमुख उपन्यास :

(1) अंधेरे बंद कमरे (सन् 1961) – मोहन राकेश

'अंधेरे बंद कमरे' सामाजिक जीवन की कथा है। लगभग दस वर्षो में फैले हुए कथा–चक्र को राकेश ने चार खण्डों में रखा है।''[14] यह कथन डॉ. श्रीमती मीना पिंपलापुरे ने लिखा है।

इस उपन्यास के चार खंडों में दो अलग–अलग विषयों को जोड़कर एक साथ रखने का प्रयास किया गया है। पत्रकार मधुसूदन की निजी आत्म उपलब्धि का संघर्ष और हरवंश एवं उसकी कलाकार पत्नी नीलिमा के बीच कशमकश।

मध्यमवर्गीय सांस्कृतिक जिन्दगी, उसकी विषमताओं एवम् विकलताओं का एक सशक्त और उन्मुक्त चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास का प्रारंभ पत्रकार मधुसूदन से होता है, जो नौ वर्षो के बाद दिल्ली आया है। इस समय अवधि में वह शहर में बहुत कुछ बदलाव पाता है। यह जिन्दगी नयी दिल्ली की सड़कों और पुरानी दिल्ली की गलियों में निर्वाह करती है: ''सड़कों की इस जिन्दगी के पीछे लोगों के अपने छोटे घरों की जिन्दगी है। एक नया शहर है, जो तेजी से बन रहा है, उसके पीछे एक पुराना शहर है जो धीरे–धीरे ढह रहा है। एक तरफ बड़ी–बड़ी नयी–नयी योजनाओं और नये प्रयोग की जिन्दगी है जिसकी एक अपनी संस्कृति है, दूसरी तरफ बदबू और गंदगी में पलती हुई सीलनदार कोठरियों की जिन्दगी है, जिसकी एक अपनी संस्कृति है।''[15] पहले वह दिल्ली के अस्वच्छ और अस्वस्थ अंचल में अपनी निम्न आर्थिक परिस्थिति के कारण रहता है। उसके बाद आर्थिक परिस्थिति सुधर जाने पर वह स्वस्थ एवम् स्वच्छ स्थान पर फेरबदली करता है। वास्तव में लेखक ने मधुसूदन के माध्यम से मध्यमवर्गीय हरबंस और नीलिमा की कहानी को उठाया है। हरबंस पहले अध्यापक और बाद में सरकारी अफसर दिखाया

जाता है। आधुनिक पति की तरह वह भी अपनी पत्नी को नृत्य में अपना केरियर बनाने के लिए प्रोत्साहित करता है। लेकिन जब वह नीलिमा को उस क्षेत्र में रस के साथ आगे बढ़ता हुआ देखता है, तो उसे मन ही मन चिढ़ हो जाती है। उसका महत्व कम होते हुए दिखाई देता है। यहाँ पर मध्यमवर्गीय पुरुष की कुंठा देखने को मिलती है। वह स्त्री को या अपनी पत्नी को अपने से आगे बढ़ता हुआ नहीं देख पाता। हरबंश को अपने अहम् पर चोट पहुँचने का खतरा महसूस होता है। महत्वाकांक्षी नीलिमा के निजी मूल्यों और हरबंस के मूल्यों के बीच जो आपसी द्वंद्व, टकराहट है उसे लेखक ने इस उपन्यास में चित्रित किया है। इस उपन्यास के अंतर्गत लेखक ने हरबंस का व्यक्तित्व कुंठित बताया है और नीलिमा का व्यक्तित्व उन्मुक्त। हरबंस और नीलिमा के आपसी संबंध बिगड़ते ही जाते हैं, जिसका प्रभाव उनके लग्न जीवन पर भी पड़ता हुआ दिखाया गया है। ''इस कथा में मनुष्य के मानसिक अंतर्द्वन्द्वों की झाँकी हम देखते हैं। ये अंतर्द्वन्द्व बड़े सामाजिक संघर्षों के परिपार्श्व में देखे गये हैं। बेचारा प्राणी किसी काल्पनिक सुख की आशा में चारों ओर भागा-भागा फिरता है, किन्तु उसे अपनी अशान्ति से छुटकारा नहीं मिलता। शर से बिंधे शिकार की भाँति वह तड़फड़ाता रहता है।''[16]

नीलिमा से बंधे हुए अपने दाम्पत्य जीवन से ऊब कर हरबंस लंदन चला जाता है। इस बीच लेखक ने हरबंस और नीलिमा की बहन शुकला के साथ आकर्षण दिखाया गया है। हरबंस के साथ मधुसूदन की भी आत्मीयता शुकला के साथ दिखाई गई है। लेकिन सुरजीत के प्रति शुकला की घनिष्ठता ज्यादा होने से लेखक ने मधुसूदन को पुरुषत्व के भाव से उत्तेजित दिखाया है। मधुसूदन आखिर में परेशान होकर दिल्ली छोड़कर चला जाता है।

लंदन जाने पर हरबंस अकेलेपन की भावना से पीड़ित, सहभोग एवम् सहअस्तित्व का आदि होने के कारण नीलिमा को लंदन बुला लेता है। नीलिमा भी अकेलेपन की भावना से पीड़ित होने के कारण उसके पास वापस चली जाती है। यहाँ पर नीलिमा और हरबंस उस मध्यमवर्गीय व्यक्ति का नेतृत्व करते हैं जो पहले आक्रोश में, उत्तेजना में आकर कुछ फैसला कर लेते हैं, लेकिन समय बीतते ही अपने द्वारा किए हुए फैसले से पीछेहट कर देते हैं।

भारतगमन के बाद हरबंस नीलिमा के द्वारा आयोजित नृत्य कार्यक्रम का प्रमुख संयोजक और प्रचारक बनता है लेकिन नीलिमा नाटक की असफलता के साथ-साथ जीवन की असफलता

का मार भी हरबंस पर ढोकर अलग हो जाती है। लेकिन उपन्यास के अंत में लेखक ने बताने की कोशिश की है कि नीलिमा भी भारतीय मध्यमवर्गीय नारी की तरह अपनी कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर हरबंस के पास वापस चली जाती है।

'अंधेरे बन्द कमरे' में पहली बार स्त्री-पुरुष के नये रिश्तों और उनमें प्रवर्तमान तनावों का भरपूर नग्न रूप समाज के सामने उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। इसमें दिल्ली महानगर की कथावस्तु निहित है, जिसे मधुसूदन के प्रसंग के माध्यम से वर्णित किया गया है, ''वहाँ के जनजीवन सांस्कृतिक जीवन व वातावरण के आडम्बरों के ऊपरी नकाबों का पर्दा उधेड़ते हुए उन्होंने यह सत्य प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है कि आज कितनी कृत्रिम परिस्थितियों में व्यक्ति जी रहा है, जिसेस वह कोई समझौता कहीं चाहते हुए भी नहीं कर सकता। हर व्यक्ति असंपृक्त सा है। हर व्यक्ति अन्दर से एक रिक्तता का अनुभव करता है, अपने को टूटा हुआ, पराजित-सा, थका-हारा महसूस करता है।''[17]

शुकला और सुरजीत की शादी के समाचार हरबंस को जब लंदन में मिलते हैं तो वह इस संबंध को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। उपन्यास के दूसरे छौर में लेखक ने ठकुराइन का प्रसंग दिखाया है। मधुसूदन अंत में सुषमा को छोड़कर ठकुराइन और उसकी बेटी को अपना प्रेम अर्पण करता है।

'अंधेरे बंद कमरे' में हमें मध्यमवर्गीय आधुनिक समाज में प्रवर्तमान मानव-संबंधों की बदलती स्थितियों, मूल्य-विघटन, संत्रास, अकेलेपन की यंत्रणा, स्त्री-पुरुषों की आर्थिक समस्याएँ एवं यौन-संबंधों की जटिलताएँ आदि दिखाई पड़ता है।

हरबंस और नीलिमा की कथा पूरे शिक्षित मध्यमवर्ग की कथा है। उन्होंने मध्यमवर्ग की विसंगतियों का कच्चा-चिट्ठा खोलकर रख दिया है। ''उपन्यास साहित्य में पहली बार लेखक ने मध्यमवर्ग के प्रेम विवाह एवं उनके बंधन की अर्थहीनता की ओर सार्थक संकेत किया है।''[18]

मोहन राकेश 'अंधेरे बंद कमरे' में मधउसूदन, नीलिमा, हरबंस और शुकला आदि विविध पात्र मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। ''ये सभी पात्र नगरीय मध्यमवर्गीय जीवन की रिक्तता, टूटेपन, कृत्रिमता, कटुता और विषाद के संकट से गुजरते हैं।''[19] इस प्रकार, मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे' आधुनिक भावबोध से संपन्न बहुचर्चित उपन्यास है।

रुकोगी नहीं राधिका? (ई. 1966) – उषा प्रियंवदा

उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास सबसे पहले 'धर्मयुग' धारावाहिक के रूप में छपा था। इसके बाद ई. 1966 में वह उपन्यास के रूप में प्रकाशित हुआ।

आज के आधुनिक युग में ज्यादातर मध्यमवर्गीय युवक–युवतिओं में विदेश जाने का एक 'ट्रेन्ड' देखने को मिलता है। इसके पीछे दो मूलभूत बातें ध्यान में आती हैं, एक तो मध्यमवर्गीय समाज में प्रवर्तमान खोखला प्रदर्शनभाव और दूसरा युवा–पीढ़ी का पाश्चात्य संस्कृति के प्रति आकर्षण। यहाँ पर उषाजी ने अपनी नायिका राधिका को भी विदेश जाते हुए दिखाया है। लेकिन राधिका का विदेशगमन का कारण उसकी मानसिक अवस्था है। 'राधिका' उच्च मध्यमवर्गीय स्वतंत्र नारी है। उसके स्वभाव में स्वच्छंदता का भाव देखने को मिलता है। मध्यमवर्गीय विद्रोही भावना उसके व्यक्तित्व में स्पष्ट रूप से झलकती है। राधिका के पिता विद्वान प्रोफेसर हैं। राधिका की माँ का देहांत हो चुका है। राधिका के भाई–भाभी भी हैं, लेकिन जैसे हमें सामाजिक दौर में देखने को मिलता है, ठीक वैसे ही राधिका का भाई पिता की तरफ ज्यादा ध्यान न देते हुए उसकी पत्नी पर देता है। पिता के अकेलेपन से उसे ज्यादा फर्क नहीं पड़ता और अपने में मग्न रहता है। उस समय राधिका अपने पिता के अध्ययन अनुशीलन में मददरूप होकर एक तरह से पिता के खालीपन को भरने की कोशिश करती है। राधिका अपने मन में पिता के व्यक्तित्व को आदर्श रूप में ग्राह्य करती है। लेकिन उसी समय उसके पिता विद्या नामक प्रौढ़ प्रोफेसर से पुनः विवाह कर लेते हैं। इस वजह से राधिका के आदर्श पिता का रूप खण्डित हो जाता है। यहाँ से राधिका का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व शुरु होता है। डेनियल पिटरसन से शादी करके वह विदेश भाग जाती है, यहीं पर उसका उद्देश्य केवल पिता के प्रति आक्रोश व्यक्त करना था।

इस उपन्यास में 'राधिका' के माध्यम से उषाजी ने आधुनिक मध्यमवर्गीय नारी के बदलते हुए सामाजिक एवम् पारिवारिक मूल्यों को उद्‌घाटित किया है। उसके मानसिक परिवेशों का यथाकथित चित्रित करने का प्रयास किया है। '' 'राधिका' एक मध्यमवर्गीय युवती है। उसे अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता की खोज न जाने कहाँ–कहाँ भटकाती है। अपनी स्वतंत्रता और अस्तित्व के बीच वह पिता, भाई अथवा सौतेली माँ विद्या, किसी को भी बरदाश्त नहीं कर पाती।''[20] वह अपनी मन मरजी के अनुसार जिन्दगी जीना पसंद करती है। ''जो आप चाहते हैं, वही हमेशा

क्यों हो? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है? मैं आपकी बेटी हूँ, यह ठीक है, पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूँ और मैं जो चाहूँगी वही करुँगी।''[21]

भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति के बीच जो भेद है, उस वजह से विदेश जानेवाले भारतीय नागरिक वहाँ पर अपना भारतीय ढाँचा पाश्चात्य ढाँचे में फिट नहीं कर पाते। वहाँ जाने के बाद अपने देश की संस्कृति, सभ्यता, रीति-रिवाज आदि बातों का हर पल संस्मरण होता रहता है। सभी के बीच होते हुए भी वह अकेलापन महसूस करता है। लेकिन रहते-रहते वह पश्चिमी सभ्यता से आदि हो जाता है। यहाँ पर राधिका और मनीष दो पात्रों के माध्यम से विदेश में व्यक्ति के मन में प्रवर्तमान अकेलेपन की भावना को उजागर किया है। यहाँ पर राधिका और मनीष के माध्यम से विदेशगमन के कारण प्रवर्तमान कल्चरल शॉक और विदेश से वापस आने पर प्रवर्तमान रिवर्स कल्चरल शॉक के कारण पैदा हुआ मानसिक द्वन्द्व का वर्णन दिखाया गया है।

रादिका अपने निजी जीवन में तीन पुरुषों से प्रभावित होकर संबंध स्थापित करती है: डैनियल पीटरसन, अक्षय, मनीष। डैनियल के साथ विदेश भाग जाती है। हर पुरुष में पिता जैसा व्यक्तित्व ढूँढने के अभियोग के कारण उसका लग्न-विच्छेद हो जाता है। ''कथा के एक पात्र डैनियल पिटरसन के अनुसार राधिका 'एबनारमल कैरेक्टर' है जो प्रेमी में पति नहीं, पिता खोजती है। उसे स्वयं यह एहसास होते तक, राधिका उस स्थिति को पार कर चुकी होती है, जबकि कोई उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कर सके। आज की बुद्धिजीवी, पढ़ी-लिखी मध्यमवर्गीय युवती की यह नियति हो गई है।''[22]

डैनियल के साथ विच्छेद होने से पहले ही वह उस अकेलेपन की भावना से संघर्ष करने के लिए साल तक विदेश में रहती है। लेकिन उस दरम्यान जिये हुए क्षणों की स्मृतियाँ उसे कुरेदती हैं, उसके व्यक्तित्व में मानसिक द्वन्द्व पनप चुका होता है, इसलिए राधिका स्वदेश वापस आती है। लेकिन स्वदेश में भी अपनों के बीच भी वह इस अकेलेपन की भावना से ग्रसित रहती है। जैसा कि उपन्यास के प्रारंभ में दिखाया गया है: ''पर भारतीय चेहरे अपने परिवेश में होने के कारण किनते स्वस्तिपूर्ण लग रहे हैं, वह भी उनमें से एक है, इस भीड़ का एक अंश...। यही चिर-प्रतिक्षित क्षण कई वर्षो बाद स्वदेश में पहली शाम अब सम्मुख है। पर राधिका महसूस कर रही है कि धीरे-धीरे उसके अन्दर एक हताशा रेंगने लगी है।''[23] अक्षय और मनीष के बीच वह जीवन में स्थायित्व

के लिए अक्षय को उचित मानती है, लेकिन उसके अतीत के प्रति शंकाशील है। मनीष उसे चाहता है लेकिन राधिका उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर भी विश्वास नहीं कर पाती।

विद्या पिता और पुत्र के असामंजस्य के कारण, राधिका के द्वारा उपेक्षा भावना के कारण आत्महत्या कर लेती है। राधिका के पिता उसे अपने साथ रहने के लिए प्रस्ताव रखते हैं, लेकिन मनीष के द्वारा रखा हुआ शादी का प्रस्ताव स्वीकार कर पिता को दूसरा आघात देती है। ''मैंने अपने बारे में कुछ सोचा नहीं है। चाहता हूँ, तुम यहाँ रहो राधिका, पहले की तरह।... मैं जाना चाहती हूँ। मनीष मेरे बन्धु।''[24]

डॉ. घनश्याम मधुप के शब्दों में ''पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा जहाँ परिवार के उत्तरदायित्वों के बीच पिसती हुई नील को एक तरह से त्याग देती है, वहीं से राधिका की एक यात्रा जिसे खोज भी कहा जा सकता है, प्रारम्भ होती है। यह यात्रा विदेशी पत्रकार डैनियल पीटरसन और अक्षय से होती हुई मनीष पर आकर रुकती है।''[25]

हमें देखने को मिलता है कि उषाजी ने अपने उपन्यास 'रुकोगी नहीं, राधिका' में उच्च मध्यवर्ग के चरित्रों का चित्रांकन किया है। 'राधिका' को एक स्वतंत्र और जीवन के प्रत्येक स्तर पर स्वाधीनता का आह्वान करने वाली युवती के रूप में रूपायित किया है। इस बात की पुष्टि इस कथन से होती है: ''आज समूचे मध्यवर्ग की नारी के सामने है। उसके सामने दो परस्पर अन्तर्विरोधी दिशाएँ हैं – एक भारतीय परम्परा और संस्कृति से जुड़ी हुई दूसरी पश्चिमी संस्कृति से जुड़ी हुई।''[26] घनश्याम मधुप के शब्दों में ''अपनी अधिकांश कथाकृतियों में उषा प्रियंवदा ने नारी के बदलते हुए सामाजिक और मानसिक परिवेशों को अभिव्यक्त किया है। वे कोई समाधान या समस्या नहीं उठातीं और पाठक के समक्ष महत्वपूर्ण प्रश्न ही रखती हैं।''[27] डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार 'रुकोगी नहीं, राधिका?' में लेखिका ने नारी को नयी अर्थवत्ता प्रदान की है।''[28] अकेलेपन और अजनबीपन का बोध जो आधुनिक युग में व्यक्ति के अंतर्गत फैलता जाता है, जिसकी पुष्टि राधिका के कथन से होती है: ''मेरा परिवार, मेरा परिवेश, मेरे जीवन की अर्थहीनता और मैं स्वयं जो होती जा रही हूँ, एक भावनाहीन पुतली–सी।''[29]

इस प्रकार उषाजी के इस उपन्यास के अंतर्गत आधुनिक मध्यमवर्गीय जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास, मानसिक कुंठा, घुटन, अस्तित्व बोध एवं अकेलेपन की भावना को राधिका के माध्यम से उजागर किया है।

अमृत और विष (ई. 1960) – अमृतलाल नागर

श्री अमृतलाल नागर का 'अमृत और विष' उपन्यास ई. 1966 में प्रकाशित हुआ है। श्री अमृतलाल नागर का 'अमृत और विष' अपने कथा–वस्तु में सामाजिक जीवन को केन्द्र में रखकर दोहरी भूमिका का निर्माण करता है। डॉ. भारत भूषण अग्रवाल ने 'समाज का सप्त आयामी दर्पण' संज्ञा से अभिहित किया है।

'अमृत और विष ' में मध्यमवर्गीय रमेश की बहन के विवाह में उद्‌भवित समस्याएँ, अरविंद शंकर के जीवन में व्याप्त विविध समस्याओं, केशवराय की बारहदरी को रुप्पनला जब अपने हस्तगत करने की कोशिश करते हैं तब युवकों का आन्दोलन, छैलू का धार्मिक स्थानों में आग लगाना, लच्छू की निरंतर बढ़ती जाती पैसी की कामना, रानी का रमेश के साथ प्रेम–विवाह के लिए निश्चय करना, हाजी साहब और उनका भ्रष्ट नालायक बेटा खोखामियाँ की हरकतें, श्रीमती माथुर का चरित्रहीन नारी के रूप में वर्णन आदि अनेक प्रसंगों का वर्णन इस उपन्यास में है।

उपन्यास के आरंभ में ही दिखाया जाता है कि मध्यमवर्गीय रमेश अपने बहन की शादी लच्छू के साथ करवाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। लेकिन मध्यमवर्गीय जीवन में सतही प्रतिष्ठा के नाम से जो विकृत प्रथाएँ व्याप्त हैं, उसने मध्यवर्ग के चेतनशील, प्रगतिशील व्यक्तिओं को बुरी तरह से तोड़ कर मरोड़ डाला है। 'अमृत और विष' में इसी बात की पुष्टि रमेश की बहन के विवाह के समय होती है। वह आर्थिक परिस्थितियों के कारण अपनी बहन के विवाह में बारातियों के लिए आतिशबाजी एवम् रण्डी का नाच का प्रबंध नहीं कर पाता। बारातियों के अक्खड़पन और तुनकमिजाजी से रमेश सही अर्थ में रो पड़ता है। बारातियों से तंग आकर रमेश कहता हैः ''मरने दो सालों को। मुझे तो सच पूछो, इन पढ़े–लिखे कहलाने वाले लोगों से घृणा हो गई है। इनसे बढ़कर नीच और स्वार्थी दुनिया भर में कहीं ढूँढे न मिलेंगे।''[30]

रमेश और रिद्धुसिंह की बेटी रानी के बीच प्रेम पनपता है। रानी बाल–विधवा है, लेकिन अपनी सौतेली माँ का सहारा पाकर पिता रिद्धुसिंह के रुढ़िग्रस्त संस्कारों की परवाह न कर रमेश के साथ विवाह करती है। उसकी पत्नी सुशील है और रमेश के साथ विवाह करती है । जीवन का मार्ग सुखमय बनाती है। वह ''रमेश के जीवन की व्यावहारिक मति, गति और मुक्ति है।''[31] इस प्रकार रानी के माध्यम से मध्यमवर्गीय समाज में प्रवर्तमान विधवा–विवाह की समस्या को

उठाया है। ''बाल विधवा रानी की घुटन जिस समाज की देन है, उसके प्रति विद्रोह कर उसका रमेश से विवाह कर लेना भी स्वाभाविक है। खन्ना और बहनजी का उन्हें प्रोत्साहन और प्रश्रय देना सुधारवादी और साथ ही मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है।''[32]

उपन्यास में लच्छू की कथा भी प्रवर्तमान है। लच्छू ऐसा पात्र है जो कायर, दुर्बल मनोवृत्तिवाला एवम् हरदम पैसे की कामना करनेवाला, अवसरवादी है। लेकिन वह अपने चारित्रिक उत्थान–पतन के प्रति जागरुक भी है। ''पूँजीवादी समाज के कारण उत्पन्न उसमें ध्वंसात्मक और आमानुषिक प्रवृत्तियों के रहते हुए भी वह कुंठा और असंतुलन का जीता–जागता चित्र है। कैरियर का मोह उसे कहाँ से कहाँ ले जाता है। वह दिशाहीन है, किन्तु उसकी पीड़ा सच्ची है। उसकी पीड़ा आज के युवक समाज की पीड़ा है।''[33]

अमृतलाल नागर के 'अमृत और विष' उपन्यास के अंतर्गत एक और उपन्यास अंतर्निहित है। इस दूसरे उपन्यास में मुख्यतया अरविन्द शंकर मध्यमवर्गीय गृहस्थ के जीवन में प्रवर्तमान विविध समस्याओं का आकलन है। वह अपने जीवन से त्रस्त है, बाहरी रूप से टूटा हुआ है, उसके बावजूद भी वह भीतर से मजबूत होकर गतिमान रहता है। उनके संतानों ने कभी उसको सुख प्रदान नहीं किया। उनका बड़ा लड़का घर से निकल जाता है। छोटा उमेश आई.ए.एस. बनकर मनमानी शादी करता है, किन्तु नियति उसे आत्महत्या के लिए बाध्य करती है। बेटी टी.बी. की दर्दी है। नन्हीं का एक मुसलमान के झूठे प्रेमपाश में फँसना, उसका गर्भ धारण करना, उसके प्रेमी का पाकिस्तान भाग जाना आदि समस्याओं ने अरविन्द शंकर को झकझोर डाला है। ''अपनी सन्तान को लेकर अरविन्द शंकर दुश्चिन्ताओं से घिरा रहता है। उसके सामने अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, सरकारी नौकरी, साम्प्रदायिकता, स्वच्छन्द प्रेम, सैक्स, भाषा आदि की समस्याओं के साथ दूसरे बेटे की कलंक गाथा उसके प्राणों में अमृत और विष की तरह घुलती रहती है।''[34] घनश्याम मधुप ने उपन्यास के चरित्रों के बारे में बताते हुए कहा है कि : ''अमृत और विष में ऐसे व्यक्तियों का चित्रण अधिक प्रभावोत्पादक बन गया है जो आज की बढ़ती हुई महँगाई में अपने अथक परिश्रम से भी पेटभर भोजन नहीं पा सकते। अर्थाभाव के कारण जीवन में अव्यवस्था है। संयुक्त परिवार टूट रहा है। बुढ़ापे में भी उन्हें काम करना पड़ रहा है।''[35] अरविंद शंकर अपनी परेशानियों से इतना त्रस्त है कि उसके मानसिक द्वंद्व का निरूपण डॉ. रामविलास शर्मा ने इन शब्दों में किया है: ''उस उपन्यास में भारत बोलता है, रुढ़ियों

में सड़ता हुआ, रुढ़ियों से लड़ता हुआ, वीर रस के आलम्बनों के बिना साधारणजनों का, असंगतियों भरा, दल–दल के ऊपर सर उठाता हुआ, अपराजेय भारत।''[36]

'अमृत और विष' के अंतर्गत नागरजी ने मध्यमवर्गीय समाज में पुरानी और नई पीढ़ी के मूल्यों के बीच प्रवर्तमान आंतरिक संघर्ष का वर्णन किया है। इस संघर्ष के कारण मध्यमवर्गीय परिवारों में जन्म लेती विभिन्न समस्याओं को उकेरने का प्रयत्न किया गया है। ''अमृत और विष की सम्पूर्ण चरित्र–सृष्टि अपने आप में पुरानी और नयी पीढ़ी के विभिन्न व्यक्तियों के विभिन्न रूपों, समस्याओं और स्तरों को उद्घाटित करने वाली एक बहुरंगी सृष्टि है। पुरुष और नारी दोनों ही वर्गो की सामान्य और विशिष्ट भूमिकाएँ उसमें प्रत्यक्ष हुई हैं और उनके माध्यम से आधुनिक समाज विशेषतः मध्यमवर्गीय समाज का एक बड़ा स्पष्ट और सजीव चित्र भी।''[37]

नागरजी ने मुस्लिम फकीर मुहम्मद और हिन्दू राधेलाल का परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध के द्वारा हिन्दू–मुसलमान ऐक्य का सेतु निर्माण करने का प्रयास किया है। भाईचारे को बढ़ावा दिया है।

समाज में जो भी मूलभूत परिवर्तन होते हैं, उसके पीछे मध्यमवर्ग का विशेषतः हाथ रहता है। मध्यमवर्ग एक ऐसा वर्ग है, जो हमेशा समाज में बदलाव, परिवर्तन का इच्छुक होता है। इस परिवर्तन के लिए वही सबसे ज्यादा प्रयत्नशील रहता है। मध्यमवर्ग की तरुण पीढ़ी का उसमें सविशेष योगदान रहता है, क्योंकि वह हमेशा समाज की राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवर्तमान पाखंड, भ्रष्टाचार, अनीति के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करता है। ''तरुण स्वभाव से आदर्शवादी है। चारों ओर जीवन में आदर्श परिस्थितियों के अभाव मं उसका खीझ–भरा विद्रोह फूट पड़ता है। टूटते और बिखरते हुए राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक ढाँचे जबरदस्ती बनाये रखनेवालों के प्रति उसमें आक्रोश है। जिस व्यवस्था के अन्तर्गत वह कराह रहा है, उसका व्यक्तित्व कुंठित हो रहा है, जिसमें यांत्रिकता आती जाती है, जिसकी अतिशय वैज्ञानिकता के भावी दुष्परिणामों से वह सशंकित है और एक अदृश्य अधिनायक्य के फलस्वरूप मन और मस्तिष्क पर पड़े बोझ से वह चिन्ताकुल है, उसे वह मिटा देना चाहता है, जीवन को स्वच्छ, निर्मल और निरामय बना देना चाहता है।''[38]

'अमृत और विष' में नगरीय मध्यमवर्गीय पात्र के अंतर्गत रमेशचन्द गौड़, लक्ष्मीनारायण खन्ना उर्फ लच्छू, रानी राठौर, उमेश शंकर, भवानी शंकर, छेल बिहारी, श्रीमती लत्ता खन्ना आदि आते हैं। उपन्यास में पात्रों का भी विभाजन स्पष्ट झलकता है। ''उपन्यास में खोखामियाँ,

लालकुँवर बहादूर, रद्धुसिंह आदि पात्रों के प्रसंग हमारे समाज का विष है तथा लेखक अरविन्दशंकर, लच्छू, रमेश आदि पात्रों के प्रसंग अमृतमय हैं।''[39]

इस प्रकार 'अमृत और विष' नागरजी की विशिष्ट एवम् महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें समाज में प्रवर्तमान 'अमृत और विष' का सही मायने में आलेखन किया गया है।

''न आनेवाला कल'' (ई. 1968) – मोहन राकेश

मोहन राकेश का उपन्यास 'न आनेवाला कल' में पहाड़ी प्रदेश के एक मिशनरी स्कूल में काम करनेवाले मध्यमवर्गीय हिन्दी के शिक्षक मनोज सक्सेना के त्यागपत्र देने की घटना केन्द्र में है। उपन्यास के अंतर्गत हिन्दी अध्यापक को अकेलेपन की भावना से ग्रसित दिखाया गया है। इस कारण उत्पन्न मानसिक द्वंद्व का चित्रण भी यथाकथित उपन्यास में चित्रित किया गया है। अकेलेपन की वजह से सक्सेना अनिद्रा की समस्या से पीड़ित है। ''सात दस। अब? सात पचीस। अब? सात सैंतालीस। अब? सात अट्ठावन। अब? जैसे कि नींद लाने के लिए एक गिनती की जा रही हो। भेड़ों की गिनती की तरह। अब? अब? अब?''[40]
आज के आधुनिक युग में संघर्षरत हर व्यक्ति इस समस्या से पीड़ित है।

सक्सेना की शादी शोभा से हुई थी लेकिन शोभा की यह दूसरी शादी थी। इस उपन्यास में शोभा का भी मानसिक द्वंद्व दिखाया गया है। शादी के बाद वह भी मध्यमवर्गीय नारी की तरह अपने स्वप्न को साकार करना चाहती है। अपने ही घर में बहुत बदलाव चाहती है, लेकिन उसके सामने वही मध्यमवर्गीय आर्थिक समस्या आकर खड़ी रह जाती है। अपने सभी अरमानों को कचोटकर वह रह जाती है।

आधुनिकयुग में मध्यमवर्गीय पति–पत्नी के बीच पाया जानेवाला अजनबीपन का उल्लेख भी इस उपन्यास में मोहन राकेश ने दिखाने की कोशिश की है। ''नींद आने तक हम दो अजनबियों की तरह दम साधे पड़े रहते थे। शायद दोनों को यही आशा रहती थी कि कभी किसी दिन कुछ ऐसा होगा जिससे वह गतिरोध टूट जाएगा और उस आशा तथा तनाव की स्थिति में ही दोनों सो जाते थे। वह बायें बिस्तर पर बायीं करवट, मैं दायें बिस्तर पर दायीं करवट।''[41]
मनोज और शोभा के संबंध तनाव भरे थे इसलिए वह अपनी पहली ससुराल खुरजा चली गई

थी। शोभा के चले जाने के बाद वह फिर से अकेलेपन की भावना से पीड़ित होता है। मनोज के त्यागपत्र देने का एक कारण यह भी दिखाया गया था, दूसरा स्कूल के वातावरण से छुटकारा।

दूसरे दिन वह अपना त्यागपत्र हेडमास्टर व्हिसलर के मेज पर छोड़ देता है, और यह बात वायुगति से पूरे स्कूल में फैल जाती है। त्यागपत्र देने पर हेड मास्टर ने पुनः विचार करने को कहा। मनोज ने व्यक्तिगत समस्या के कारण त्यागपत्र दिया है यह बताने पर आखिर उसका त्यागपत्र स्वीकार किया जाता है। मनोज के त्यागपत्र को स्कूल के अन्य सदस्यों ने व्हिसलर के विरोध के रूप में देखने का भी प्रयत्न किया। लेकिन वास्तविकता यह थी कि शोभा जा चुकी थी और वह शिमला हमेशा के लिए छोड़ना चाहता था।

आधुनिक समाज में मध्यमवर्गीय व्यक्ति में यौन–दुर्बलता की समस्या भी प्रखर होती जा रही है। यहाँ पर लेखक ने दो प्रसंगों के माध्यम से उसे पाठक के सामने उजागर करने की कोशिश की है। पहले प्रसंग में हम देख सकते हैं कि शिमला छोड़ने से पहले बानी ने उसे सेवाय में बुलाया था। वहाँ पर अंधेरे में चलते–चलते बानी ने अपने मन की परतें खोलकर अपने और दूसरों के विषय में बहुत बातें बताई। उसी समय मनोज ने उसे चूम लिया और बाहों में जकड़ लिया। उस समय निराश होकर उसने बानी के रूम पर जाने से इनकार कर दिया। दूसरे प्रसंग में जब मनोज ने स्कूल के चपरासी फकीरा की पत्नी काशनी को अपना बचा हुआ सामान देने के लिए बुलाता है। काशनी जब उसके घर आती है तब उसकी आँखों में कुछ दूसरा भाव देखकर वह उसे भी बाहों में पकड़कर चूम लेता है। काशनी ने कोई प्रतिक्रिया जाहिर न की और पूछने पर बताया कि उसका ऑपरेशन हुआ है। '' 'न आनेवाला कल' उपन्यास स्त्री–पुरुष संबंधों की गहराई से खोज करता है और इन संबंधों में तनाव एवं टूटन के कारणों पर प्रकाश डालता है। सूक्ष्म मनोविश्लेषण अधिक तथा स्थूल घटनाएँ इसमें बहुत कम हैं।''[42]

राकेश स्वयं मध्यमवर्गीय परिवार से संलग्न थे इस कारण इनके उपन्यासों में मध्यमवर्ग से संबंइधत चरित्रों का सफलतापूर्वक निरूपण हुआ है। 'न आनेवाला कल' के अधिकांश चरित्र मध्यमवर्ग के महानगरीय जीवन से संलग्न दिखाया गया है। 'न आनेवाला कल' के मनोज, शोभा, कोहली, शारदा, मिसेज दारूवाला, मिस बॉबी होल, टोनी व्हिसलर, मिसेज पार्कर, गिरधारी लाल, बुधवानी, चेरी, लौरी इत्यादि चरित्र मध्यमवर्ग में आते हैं। इनके इस उपन्यास में

''आधुनिक मध्यमवर्गीय जीवन की विसंगतियाँ, संत्रास, अकेलापन, मानव-संबंधों की कृत्रिमता, मृत्यु-बोध, इत्यादि अस्तित्ववादी स्थितियों का चित्रण किया है।''[2]

इस प्रकार मोहन राकेश ने अपने उपन्यास 'न आनेवाला कल' में वर्तमान समय में वर्तमान मध्यमवर्गी? समाज में व्याप्त विभिन्न तरह की विषमताओं, कठिनाइयों, घुटन, ऊब, ईर्ष्या, अजनबीपन, अकेलापन इत्यादि का स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

कान्दली और कुहासे (ई. 1969) – गिरिधर गोपाल

'कान्दली और कुहासे' उपन्यास गिरिधर गोपाल द्वारा ई. 1969 में रचा गया। इस उपन्यास के अंतर्गत मध्यमवर्गीय वर्तमान पीढ़ी मानवीय न्याय, सुरक्षा एवं अधिकारों के प्रति कितनी सजग है यह दिखाया गया है। 'कान्दली और कुहासे' के सारे पात्र जीवन में प्रवर्तमान परिस्थितियों के साथ संघर्ष करते-करते टूट जायेंगे लेकिन झुकेंगे नहीं। डॅ. मदान के अनुसार ''गिरिधर गोपाल 'कान्दली और कुहासे' (1969) संभोगीय उपन्यासों से हटकर है,लेकिन वह भी महानर के परिवेश और नगरे बोध से जुड़ा है।''[44] कथा एक शाम तक सीमित है। जिसमें लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आज की संपूर्ण पीढ़ी दिशाहीन एवम् कुंठित नजर आती है।

'कान्दली और कुहासे' में मध्यमवर्गीय किशू सबसे ज्यादा केन्द्रवर्ती पात्र है। जो शिक्षित लेकिन बेरोजगारी से त्रस्त युवक है। आधुनिक समय में भी हम देखते हैं कि युवक-युवतियों के पास पदवी तो है लेकिन नौकरी नहीं है। किशू भी इस समस्या से पीड़ित है। किशू के साथ-साथ सुरेन्द्र भी इस बेकारी का भोग है। एम.ए. सेकेण्ड डिविज़न में उत्तीर्ण होने पर भी किशू नौकरी के लिए दर-दर भटकता है, लेकिन उसे नौकरी नहीं मिल पाती। उसे सर्वत्र कृत्रिमता, बेईमानी और स्वार्थपरता का ही विश्वासघाती चक्र घेरे रहता है। किशू वास्तव में हमारे दिशाहीन समाज के निराशा से प्रताड़ित उस युवक का प्रतीक है, जिसे घिनौनी राजनीति और वैषम्य पूर्ण आर्थिक अवस्था ने निष्क्रिय, उद्देश्यहीन और विपथगामी बना दिया है। इसी कारण वह एक जगह कहता हुआ दिखाई देता है कि ''गाली-गलौज यह तो छोटी चीज़ है, जूतों से बात की जानी चाहिए इन बदमाशों से, गद्दारों से।''[45] इसके इस कथन के माध्यम से मध्यमवर्गीय पीढ़ी की चिढ़, असंतोष, झुंझलाहट व्यक्त होता है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान का कहना हैः ''वह भी आज के

दिशाहीन परिवेश में भटकने का करुण संकेत देती है। इसमें भी आधुनिकता के बोध को आँका जा सकता है।''[46]

मध्यमवर्गीय परिवारों में अर्थ के कारण उद्‌भवित आर्थिक समस्याओं को भी इस उपन्यास में उठाने की कोशिश की है। अर्थाभाव के कारण किशू के पिता की मृत्यु हो जाती है। इस वजह से बड़ा भाई किशन परिवार का उत्तरदायित्व लेता है, लेकिन माँ की बीमारी का इलाज, भाईयों और बहन सुधा की पढ़ाई, घर का खर्च आदि जिम्मेदारियों का भार नहीं ढो पाता।

आज मध्यवर्ग को जीवनयापन करना बड़ा मुश्किल हो गया है, क्योंकि महँगाई दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। महँगाई ने मध्यवर्ग की कमर ही तोड़ दी है। इन सभी बातों पर ध्यान उपन्यासकार ने केन्द्रित किया है। ''जिसमें समस्या केवल उसके नायक की नहीं, अपितु उस पीढ़ी की है, जो मध्यवर्ग की और निम्न वर्ग की है। इस पीढ़ी के लिए अर्थ और उसके अभाव के कारण उत्पन्न स्थितियाँ इतनी महत्वपूर्ण हैं, जिन्दगी का ढाँचा ही उस पर आधारित है। आधुनिक जगत की भयंकर समस्या अर्थाभाव है जो मानवीय, सौहार्द, प्रेम आदि को मिटाती जा रही है।''[47]

आर्थिक व्यवस्था के कारण जो महँगाई मध्यवर्ग पर फटकार बरसाती है, किशू के इस कथन के द्वारा स्पष्ट होता है। ''आराम हुआ होगा आज़ादी से किसी दूसरे वर्ग को। मध्यमवर्ग तो बुरी तरह पिस गया। ... महँगाई के साथ–साथ एक दूसरा शैतान भी मध्यवर्ग की गरदन पर सवार है – टैक्स। घर मकान पर टैक्स, अनाज, पानी, कपड़े पर टैक्स, आप पर टैक्स, जीन पर टैक्स, मरने पर टैक्स। ... साले हवा पर भी टैक्स लगा देंगे।''[48]
यह प्रश्न केवल किशू के जीवन में ही विद्यमान नहीं है, बल्कि देश के अनगिनत मध्यमवर्गीय युवकों के जीवन में भी प्रवर्तमान है।

किशू और मीरा के प्रसंग को भी दिखाया गया है। उनके संबंध बनाये रखने के प्रयत्न को इस उपन्यास में दिखाया गया है। किशू तो दिशाहीन है ही, लेकिन मीरा के जीवन में उसके द्वारा बोये हुए पौधे की वजह से जिन्दगी जीने के लिए विवश है।

'कान्दली और कुहासे' में लेखक ने आधुनिक जीवन की सारी घुटन, निराशा, कुंठा, संत्रास, छटपटाहट, अर्थाभाव का वर्णन बड़ा ही मार्मिक शैली में किया है। '' 'कान्दली और कुहासे' साठोत्तर उपन्यासों में एक ऐसा उपन्यास है, जो व्यक्ति के बदलते आयामों को सैक्स

की कुण्ठा की बजाय एक पीढी के खण्डित सपने, उसकी दिशाहीनता, भटकाव से भरी उसकी यात्रा, टूटन, घुटन, क्षोभ, आक्रोश, विवशता तथा समझौता और अ-समझौता के स्तरों पर उद्घाटित करता है।''[49]

वर्तमान आर्थिक परिवेश का प्रभावपूर्ण वर्णन इस उपन्यास में हुआ है। आज़ादी के इतने वर्षो के बाद भी वर्तमान युवा पीढ़ी किस प्रकार गरीबी, बेकारी, भ्रष्टाचार, राजनीति, कुचक्रों, महँगाई में पिसते जा रहे हैं, उसका कच्चा चिठ्ठा गिरिधर गोपाल का 'कान्दली और कुहासे' में विद्यमान है।

इसके अलावा भी उपर्युक्त एवम् साठोत्तरी अन्य उपन्यासकारों के उपन्यासों में भारतीय मध्यमवर्ग की विविध पहलुओं को उजागर किया गया है। उषा प्रियंवदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' प्रयोगवादी एवं उनका प्रथम उपन्यास है। उनके उपन्यास में हमें मध्यमवर्गीय नारी जीवन के परिवर्तित आयामों की करुण अभिव्यक्ति देखने को मिलती है कि हम नहीं चाहते, वही करने को विवश हैं। उपन्यास की नायिका सुषमा उसी विडम्बना की शिकार है। उषाजी ने इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग को लिया है। ''मध्यमवर्गीय परिवार उनकी बढती आर्थिक कठिनाइयाँ तथा पुरुष के साथ-साथ उन्हें झेलती हुई नारी का चित्र यथार्थ की जमीन पर प्रस्तुत किया गया है।''[50] इस लघु उपन्यास की नायिका सुषमा है। अपने मध्यमवर्गीय परिवार के भरण-पोषण के लिए वह लडकियों के कॉलेज में होस्टल वार्डन हो जाती है।। आर्थिक भरण-पोषण हेतु आजीवन कुँआरी रहने का निश्चय करती है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य को विकास और नई दिशा देने में कमलेश्वर का महत्वपूर्ण योग है। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' (1961), 'लौटे हुए मुसाफिर' (1963), 'तीसरा आदमी' (1964) आदि उनकी सामाजिक औपन्यासिक कृतियाँ हैं।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' निम्न मध्यमवर्गीय समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन का सजीव चित्र है। लेखक ने अपने प्रगाढ़ अनुभव और संवेदनाजन्य अनुभूतियों के आधार पर इसकी कथा लिखी है। इसमें मैनपुरी कस्बे की कहानी है। इस लघु उपन्यास का नायक सरनामसिंह है। आजादी के लिए लड़नेवाले मध्य एवं निम्न वर्ग ने जिस नये समाज की कल्पना की थी, वह मूर्ति छिन्न-भिन्न होकर बिखर गई है। उनका दूसरा उपन्यास 'डाक

बंगला' है, जिसमें उन्होंने आधुनिक मध्यमवर्गीय नारी जीवन की अनेक विसंगतियों को रेखांकित किया है। इस लघु उपन्यास की कथा एक ऐसी युवती इरा की कहानी है, जिसने जीवन में विमल, बतरा, सोलंकी और डॉक्टर.. चार पुरुषों से प्रेम किया। 'तीसरा आदमी' उपन्यास आदिकाल से स्त्री और पुरुष के बीच आता रहा है, लेकिन कमलेश्वर का 'तीसरा आदमी' आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों की उपज है। इसमें दिल्ली के निम्न मध्यमवर्गीय परिवेश, छोटे-छोटे कमरों के दड़बों में सड़ती हुई जिन्दगी की तस्वीर पेश की गयी है। "तीसरा आदमी के रूप में लेखक का यह लघु उपन्यास वर्तमान आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर मध्यवर्गीय व्यक्ति-चेतना के बदलते हुए स्वरूप का एक चित्र है।"[51] कमलेश्वर ने मध्यवर्गीय परिवार, व्यक्ति और प्रेम को पहचानने की कोशिश की है। 'तीसरा आदमी' की कथा में हमें देखने को मिलता है कि प्रमुख पात्र मैं है जिसकी शादी चित्रा से होती है। आर्थिक परिस्थितियों के कारण दोनों दिल्ली जाकर रोजी-रोटी की तलाश में लगते हैं। वहाँ पर उनको तीसरे आदमी सुमन्त के कारण मानसिक द्वंद्व का सामना करना पड़ता है, उसका उल्लेख है।

नरेश मेहता के 'डूबते मस्तूल' में मध्यवर्गीय सुन्दरी का खोखलापन, 'धूमकेतुः एक श्रुति' में मध्यमवर्गीय अनाथ बालक की जिज्ञासा का विवरण मिलता है। राजकमल चौधरी आधुनिक साहित्य के सबसे विवादास्पद साहित्यकार हैं। उनका सबसे अधिक चर्चित उपन्यास 'मछली मरी हुई' है। कथा का नायक निर्मल पद्मावत है। 'पिछली बड़ी लड़ाई के बाद कलकत्ता शहर में नई पीढ़ी के व्यापारियों की एक जमात एक सुबह सोकर उठने के बाद अचानक पूँजी, प्रभुत्व और उद्योग-धन्धों की बन्द तिजोरियाँ खोलकर नया से नया व्यापार करने के लिए चौरंगी, डलहौजी, स्कवायर, महात्मा गाँधी रोड़, धर्मतल्ला और पुरानी क्लाइव स्ट्रीट में, अमरीकी शैली के ऊँचे दफतरों में बैठ गई।"[52] निर्मल पद्मावत इसी जमात का व्यापारी है। इसमें मध्मयवर्ग में फैलता हुआ यौनाचार, यौन विकृतियों और उनसे उत्पन्न असाधारणताओं का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में वैयक्तिक प्रतिमानों द्वारा उजागर किया है। "मछली मरी हुई' समलैंगिक स्त्री यौनाचार पर लिखा गया हिन्दी का सम्भवतः प्रथम उपन्यास है।"[53] उनका दूसरा उपन्यास 'देहगाथा' है,जो एक प्रकार से लेखक की आपबीती ही है। इसमें विवाह, रिश्ते, पारम्परिक मान्यताओं आदि मध्यवर्गीय समाज में प्रवर्तमान विविध समस्याओं के, खोखलेपन का निर्देश है। घनश्याम मधुप

ने अपने आलोच्य ग्रंथ 'हिन्दी लघु उपन्यास' में इस बात का निर्देश करते हुए लिखा है कि ''टूटती हुई पारंपरिक मान्यताएँ, संत्रास, आक्रोश आदि के बीच छटपटाती नयी पीढ़ी की अनुभूति को अभिव्यक्त करने में राजकमल ने अपने ढंग की जो ईमानदारी प्रस्तुत की है, वह साहस की सीमा को तो छूती ही हैं।''[54] 'नदी बहती थी' में सेक्स और अर्थ को केन्द्र में रखकर लेखक ने कलकत्ता के मध्यमवर्गीय बंगाली समाज का यथार्थ चित्रण किया है।

मोहन राकेश कृत 'अन्तराल' गहरे मानवीय संबंधों की कहानी है, जो आधुनिक मानव के व्यस्त सामाजिक जीवन के बीच आपसी सूक्ष्म, संबंधों को रेखांकित करती है। 'श्यामा' के द्वारा आधुनिक विवाहित जीवन की विसंगतियों को बड़ी गहराई से पकड़ा है तथा उन्हें सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। स्त्री–पुरुष का संबंध आजकल बौद्धिकता के विकास के कारण दिन–प्रतिदिन जटिल बनता जा रहा है। इस उपन्यास में उसकी ही यथार्थ अभिव्यंजना हुई है। ''राकेश के उपन्यासों के सभी पात्र आधुनिक सामाजिक परिवेश में जीनेवाले स्त्री–पुरुष हैं, वे शिक्षित हैं, आर्थिक दृष्टि से पारिवारिक उत्तरदायित्वों को झेलनेवाले भी हैं और मध्यमवर्गीय परिवारों के प्रतिनिधि भी हैं।''[55]

रमेश बक्षी साठोत्तरी कथाकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। इनके उपन्यासों में 'किस्से ऊपर किस्सा', 'हम तिनके', 'एक घिसा हुआ चेहरा', 'अठारह सूरज के पौधे' इत्यादि उल्लेखनीय हैं। 'अठारह सूरज के पौधे' उपन्यास का नायक एक साधारण रेलवे कर्मचारी है, जिसकी गणना हम निम्न मध्यवर्ग के अंतर्गत कर सकते हैं। जो पटान कोट से बम्बई तक यात्रा करता है। यात्रा करते समय ही वह वर्तमान में अतीत को दोहराता है। रमेश बक्षी का एक और भी लघु उपन्यास है जिसमें निम्न–मध्यवर्गीय परिवार की झलक मिलती है– 'एक घिसा हुआ चेहरा'। इसमें निम्न मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक स्थिति, परंपरागत नैतिक मान्यताओं, रुढ़ियों एवं सामाजिक प्रतिमानों का चित्रण किया गया है। इस रचना में निम्न मध्यवर्गीय दाम्पत्य की कहानी है, जो एक–दूसरे के झूठे सहारे से जी रहे हैं। इस रचना की नायिका प्रेमिला नृत्यकला के प्रति महत्वाकांक्षी है, लेकिन उसकी शादी इन्टर पास साधारण क्लर्क से कर दी जाती है। इसके कारण उसकी सारी उम्मीदों, स्वप्नों, आकांक्षाओं पर पानी फिर जाता है। ''मध्यमवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण रमेश बक्षी ने इस लघु उपन्यास में किया है। भारतीय युवतियाँ कई बार

विवाह से पूर्व जो स्वप्न देखती हैं, वे विवाह के पश्चात अधूरे रह जाते हैं। उनके स्वप्न टूटकर एक घिसा हुआ चेहरा बन जाता है।''[56]

इस प्रकार रमेश बक्षी ने अपने साठोत्तरी लघु उपन्यासों में मध्यमवर्गीय परिवार की समस्याओं का सफल चित्रण किया है। ''रमेश बक्षी का प्रमुख प्रतिपाद्य है मध्यमवर्ग और उनकी लड़खड़ाती आर्थिक स्थिति, जिसके बीच यह वर्ग बुरी तरह से पिसा जा रहा है। मध्यमवर्गीय वैयक्तिक जीवन को सामाजिक परिवेश में बड़ी सफलता के साथ रमेश बक्षी ने चित्रित किया है।''[57]

गिरिधर गोपाल का 'चांदनी के खण्डहर' एक लघु उपन्यास है। इसमें मध्यमवर्गीय परिवार का युवक कथा–नायक है, जो डॉक्टरी शिक्षा प्राप्त कर विलायत से लौटता है। घर की आर्थिक दशा देखकर वह असमंजस में पड़ जाता है। माँ–बाप, बहन–भाई और भाभी की मुस्कान जो अंधेरे में गरक हो गई है उसके कारणों की तलाश करता है। उसकी आन्तरिक शक्ति उस अंधकार से जुझने का निश्चय करती है और अन्त में वह विजय पाता है। यह लघु उपन्यास 'मध्यमवर्गी? जीवन की विश्रृंखल आस्था का पूर्ण परिचायक है। यथार्थ जीवन का सच्चा चित्रण, आर्थिक संकट से आक्रान्त मध्यवर्गीय जीवन की घुटन, आदतों का खण्डन, परम्पराओं के पंजे में जकड़ी हुई मानवीय चेतना का तर्क और बौद्धिक आयामों से संघर्ष इत्यादि इस उपन्यास में सफलतापूर्वक व्यक्त किया गया है।''[58] इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग के जीवन की आर्थिक दुर्दशा से जन्य विश्रृंखलता एवं विघटना का चित्रण किया गया है। ''आजकल मध्यमवर्गीय समस्याओं को लेकर लिखे जाने वाले लघु–उपन्यासों की और लेखकों प्रवृत्ति अधिक जान पड़ती है। गिरधर गोपाल के 'चांदनी के खण्डहर' जैसे उपन्यास को देखकर, ऐसे उपन्यासों का भविष्य बड़ा ही उज्जवल दिखलाई पड़ता है।''[59] निम्न मध्यवर्गीय परिवार का गहन यथार्थ जीवन इस कृति में अंकित है।

धर्मवीर भारती का उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में मध्यवर्ग के खोखलेपन को बेनकाब किया है। ''सूरज का सातवाँ घोड़ा' लेखक ने निम्न मध्यवर्ग के सम्पूर्ण चित्रों को समेटकर उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। इस वर्ग की घात–प्रतिघातों, अंध–विश्वासों, सामाजिक रुढ़ियों, अहम्मन्यताओं और कुरीतियों के बीच उखड़ी हुई जिन्दगी का हास्य और व्यंग्य के माध्यम से चित्रण किया गया है।''[60] माणिक मुल्ला जो नायक है, उसके जीवन में तीन लड़कियाँ आती हैं या कहा जाय कि जीवन में तीन बार उसने प्रेम किया। जमुना, लिली और

सत्ती, तीनों मध्यमवर्गीय परिवार की लड़कियाँ हैं। इन तीनों की समस्या भी अलग–अलग दिखाई गई है। 'तन्ना पढे लिखे मध्यवर्ग का सच्चा प्रतीक है और उसकी समस्या परिस्थिति तथा नियति जैसे सम्पूर्ण मध्यवर्ग की ही है।''[61] धर्मवीर भारती ने मध्यवर्ग के जीवन की वास्तविकता को यहाँ पर प्रतीकों के माध्यम से खोला गया है। ''इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग की जिन समस्याओं को उठाया गया है, भारती की सूक्ष्म अंतर्दृष्टि ने उनके प्रत्येक पक्ष का उद्घाटन यथार्थ की भावभूमि पर किया है। आधुनिक जीवन की परिवर्तनशीलता को प्रत्येक स्तर पर गहराई से आत्मसात कर भारती ने प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना करने की सफल चेष्टा की है। ...... उनका यह उपन्यास बिना कोई कृत्रिम मुखौटा लगाये निम्न मध्यमवर्ग के जीवन के यथार्थ को बड़ी सफाई और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में समर्थ होता है।''[62]

श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' एक आंचलिक उपन्यास है। आंचलिक उपन्यासों में भी हमें मध्यमवर्ग का वर्णन देखने को मिलता है। उपन्यास का महत्वपूर्ण पात्र रंगनाथ छुट्टियाँ व्यतीत करने, कुछ थीसिस लिखने और कुछ अपना स्वास्थ्य बनाने के लिए शहर से गाँव में आता है। उसी के आसपास विभिन्न पात्रों का ताना–बाना बुनता है। रंगनाथ आज के बुद्धिजीवी अर्थात् मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय मध्यवर्गीय जीवन के समस्त पहलू सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक आदि को लेखक ने व्यंग्य के द्वारा सजीव बनाया है। मास्टर मोतीराम, खन्ना मास्टर, गयादीन, वैधजी, रुप्पन बाबु, सनीचर आदि इस उपन्यास में महत्वपूर्ण चरित्र हैं। इस उपन्यास के माध्यम से ग्रामीण मध्यमवर्गीय समाज में फैले हुए समाज और व्यवस्था के भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, योजनाओं का दुरूपयोग और खोखलापन, गुटबन्दी, राजनीति में गुण्डों एवं लुटेरों के प्रश्रय, सरकारी कार्यालयों, न्यायालयों एवं पुलिस विभाग की दुर्गति, शिक्षा का उत्तरोत्तर ह्रास, चुनाव के हथदंड, विज्ञापन की बाढ़ आदि को विवरणात्मक ढंग से उपस्थित किया है।

इन उपन्यासों के अलावा सुरेश सिन्हा का 'सुहब अंधेरे पथ पर', कमलेश्वर का 'समुद्र मे खोया हुआ आदमी', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', रमेश बक्षी कृत 'बैसाखियों वाली इमारतें', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'शहर में घूमता आइना', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स', शरद देवड़ा का 'टूटती इकाइयाँ' आदि उपन्यासों में भारतीय मध्यवर्ग की प्रतिमा को किसी न किसी दृष्टिकोण से प्रतिभासित किया है।

साठोत्तरी के सातवें दशक और आठवें दशक के उपन्यासों में भारतीय मध्यमवर्ग की परिस्थितियाँ, उसमें आया हुआ आधुनिक बदलाव, मूल्य परिवर्तन, समस्याएँ अधिक रूप से सुस्पष्ट हुई हैं। सातवें दशक में संयुक्त परिवार का अस्तित्व पर प्रायः पूर्ण विराम हो चुका है। शैक्षणिक प्रगति के कारण लड़कियों ने समाज और घर में अपनी पृथक् सत्ता बना ली है। संयुक्त परिवार विघटन में आर्थिक कारण और नारी की जागरुक प्रवृत्ति दोनों का महत्वपूर्ण योग है। जीवन के मूल्य दिन–ब–दिन बदलते जा रहे हैं और इन परिवर्तित मूल्यों का पारिवारिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ता है। सातवें दशक के सामाजिक उपन्यासों में इस बात पर प्रकाश डाला गया है। बुद्धिजीवी वर्ग ने अब भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को प्रश्रय दिया। आधुनिक शिक्षा के कारण मध्यवर्ग में प्रवर्तमान पारंपरिक मान्यताओं में भी बदलाव आया। सतीप्रथा, पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह, दहेज प्रथा आदि रुढ़ मान्यताओं से भारतीय नारी बुरी तरह आहत थी। सातवें दशक में विधवा–विवाह उतनी चौंकानेवाली बात नहीं रही। इन उपन्यासों में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि कुथ तरुण विधवा समस्या को सुलझाने के प्रयास रूप पुनःविवाह करते हुए दिखाई देते हैं। मध्यवर्ग में प्रवर्तमान स्वच्छन्द प्रेम, काम भावना और यौन सम्बन्धों का चित्रण उन्मुक्त रूप में दिखाया गया है। सातवें दशक के उपन्यासों में हम देख सकते हैं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे विचार तो मुक्त दिखाई देते हैं, किन्तु उन विचारों ने दूसरा रास्ता अपनाया है जिसमें मनुष्य स्वार्थी और ईर्ष्यालु बन गया है। परिणामतः मनुष्य सामाजिक मूल्यों में संघर्ष करता दिखाई पड़ता है। सातवें दशक के उपन्यासों में हमें तत्कालीन वर्गो का यथाकथित विवरण मिलता है। समाज की संपूर्ण चेतना ही मध्यवर्ग के संघर्ष की देन है और आज के उपन्यास मध्यवर्ग के अभिनय का यथार्थ चित्रण करने में विशेष सचेष्ट हैं। इस दशक के उपन्यासों में हम देख सकते हैं कि ग्रामीण मध्यवर्ग भी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है। इस समय के उपन्यासों में हम देख सकते हैं कि मध्यवर्ग का संघर्ष आंतरिक है, बाह्य नहीं। इस वर्ग का व्यक्ति अपने अन्दर ही अन्दर टूटकर जीता हुआ दिखाई देता है। इसे अपनी जिंदगी में विविध उलझनों का सामना करना पड़ता है। मध्यमवर्ग का सामाजिक और पारिवारिक कुण्ठाग्रस्त संघर्ष को भी स्पष्ट किया गया है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक उन्नति कर सकता है। लेकिन सातवें दशक के उपन्यासों में हम देख सकते हैं कि समाज में प्रवर्तमान अज्ञानता

और पिछड़ेपन की जो समस्या है उसका निवारण करने की कोशिश अधिक की गई है। सातवें दशक के उपन्यासों में जो शैक्षणिक सुविधाएँ केवल शहरों में देखने को मिलती थीं, वही ग्रामों में भी दिखाई गई हैं। सातवें दशक में दिखाया गया है कि जो अंध विश्वास मध्यमवर्गीय समाज में प्रवर्तमान हैं उसका रूप ठोस नहीं है। अन्ध विश्वासों के प्रति भारतीय मध्यवर्ग को इस समय में विश्वास है लेकिन आस्था नहीं। सातवें दशक के उपन्यासों में प्राचीन मूल्य ढहते चले गये हैं। आज के प्रत्येक व्यक्ति के भीतर नयी–पुरानी संस्कृति के मूल्यों के बीच संघर्ष स्पष्ट होता चला जाता है।

साठोत्तरी सातवें दशक के निम्न–लिखित उपन्यासों में मध्यमवर्ग की विविध समस्याओं का विवेचन व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। इस युग के अधिकांश उपन्यासकारों ने मध्यमवर्गीय समस्याओं को विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की है। मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', भीष्म सहानी का 'तमस', 'कड़ियाँ', 'झरोखे', ममता कालिया का 'बेघर', गोविन्द मिश्र का 'वह अपना चेहरा', कृष्णा सोबती का 'सूरज मुखी अंधेरे के', 'जिन्दगीनामा', हेतु भारद्वाज का 'बनती बिगडतीं लकीरें', 'गांठ', 'सांड', गिरिराज किशोर का 'जुगलबन्दी' आदि उपन्यासों में भारतीय मध्यमवर्ग का विवर्णन मिलता है।

बेघर (ई. 1971) – ममता कालिया

ममता कालिया कृत 'बेघर' उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग के युवक की कथा को केन्द्रित किया गया है, जिसके माध्यम से लड़कियों की कुँवारेपन की कसौटी को लेकर हमारे समाज में आज भी जो रुढ़ धारणाएँ हैं, उन पर तीखा व्यंग्य किया है। इसका नायक परमजीत जो अल्प शिक्षित और रुढ़िगत संस्कारों की कुण्ठा से जकड़ा हुआ आन्तरिक संस्कारों को बाह्य परिवर्तन के साथ समतुलित करने के लिए संघर्षशील रहता है। 'बेघर' में जटिल मानवीय मनःस्थितियों को सुलझाने का प्रयास किया गया है। ''ममता कालिया के इस उपन्यास का आधार एक निश्चित सच्चाई है, सच्चाई का केवल एक रूपक नहीं, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के सूत्र उसके कारण भी व्याख्या कर सकते हैं पर लेखक की दृष्टि है। उसे गहरा कर सकती है और उसकी निरर्थक परिणति को भी मानवीय सहानुभूति से पूरी तरह बाहर नहीं जाने देती।''[63]

'बेघर' पति–पत्नी के शारीरिक संबंध को केन्द्र में रखकर लिखा गया संभोगवादी उपन्यास है। इसमें पुरुष की संस्कारबद्ध जड़ता और संदेहशील प्रवृत्ति को उभारा गया है।

'बेघर' उपन्यास के प्रारम्भ में दिखाया गया है कि परमजीत स्कूली जिन्दगी बिताते हुए अपने गाँव के छोटे कस्बे को छोड़कर बॉम्बे चला जाता है। लेकिन वहाँ जाकर भी वह अकेलेपन की भावना से पीड़ित रहता है। उस समय उसकी मुलाकात संजीवनी से हुई। संजीवनी के प्रेम में वह अपने को बँधा हुआ पाता है। अब इस विशाल शहर में वह अकेला नहीं है। ''संजीवनी से सम्भोग के बाद परमजीत को यह एहसास कचोटने लगता है कि शादी से पहले उसकी अलग दुनिया रही होगी, जिसका भागीदार कोई और रहा होगा। इस संशय का कारण यह है कि संजीवनी संभोग के समय न चीखी, न पुकारी और न ही खून आया। इस तरह परमजीत पहला नहीं है। इसका दुःख उस पर इतना हावी हो जाता है कि यह दोनों के सम्बन्धों को तोड़ देता है।''[64] यह संशय उसके जीवन की दिशा को बदलकर रख देता है। ''परमजीत को तकलीफ हुयी यह जानकर कि वह पहला नहीं था। बदहवासी मिटते ही यह बात उसे पत्थर की तरह लगी।''[65] संजीवनी इस झूठी रुढ़ियों की वजह से इसे खो बैठती है जो उसके जीवन को दिशा पा सकता था। परमजीत का अकेलापन अब दुगुना हो चुका था।

अपने ही अकेलेपन से तंग आकर पिता का पत्र प्राप्त होते ही दिल्ली चला जाता है, वहाँ पर रमा नाम की दूसरी अनजानी लड़की से शादी कर लेता है। अपनी धारणा के अनुसार वह रमा को 'कुँवारी' पाता है। लेकिन रमा को कंजूस, फूहड़ और वैवाहिक जीवन को पारम्परिक दृष्टि से देखनेवाली लड़की के रूप में पाया, जिससे उसका अकेलापन और तनाव पूर्ण रूप से बढ़ जाता है। विचारों की दूरी, मानसिक सोच में अंतर, और आपसी रुचियों में भिन्नता उसके लग्न जीवन को नर्क बना देते हैं। वह सोचता हैः ''रमा उसे पुर्जा बनाने में लगी हुई है। इतनी ठर्रेवाली जिन्दगी की उसने कल्पना भी नहीं की थी। उसे (रमा) को कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसकी बातें परमजीत की आँखों में कैसे ज़ख्म छोड़ जाती हैं।''[66]

कौमार्य की कसौटी पर खरी उतरनेवाली रमा पति परमजीत की अनगिनत कोमल भावनाओं को चूर–चूर कर देती है। ''खयालों में जो घर उसने बनाया था, उसमें धीमा संगीत, खूबसूरत कमरे और कलात्मक पत्नी थी। पत्नी के साथ उसने एक मोहक और मोहित रिश्ते

की कल्पना की थी। कहाँ थी उसमें यह तीखी आवाज़, गलत तह किए हुए अखबार और कानों में दबे हुए तिलचिट्टे।''[67] उसे लगता था कि रमा उसे पुर्जा बनाने पर तुली है क्योंकि ''वह चवनिया बचाकर खुश होनेवाली घरन औरत थी। उसकी वावनियों से सोचकर परमजीत को लगता कि वह किसी सुधारगृह में भरती हो गया है। रमा का दिमाग छोटा होता जा रहा ता और परमजीत की दहशत बढ़ती जा रही थी।''[68]

रमा के सामने वह विवश था। रमा को लेकर उसकी कुण्ठा बढ़ती ही जाती थी। ''उसे लगता है, रमा उसे कभी नहीं समझेगी। कभी वह रमा की तरफ साथ की जरुरत से देखता तो पाता उसकी मौजूदगी से बिलकुल बेखबर वह गुड्डु को थपक रही है या पप्पू के निकर की मरम्मत कर रही है।''[69] कुँवारेपन की अवधारणा के कारण परमजीत को अपने जीवन में बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी। ''वह रमा जैसी कंजूस और फूहड़ लड़की से शादी करने के बाद निरन्तर अजनबी और खालीपन के बोध से अधिक टूटता जला जाता है।''[70] वास्वत में घर का दबाव ही परमजीत को बेघर करता है। लेकिन अगर ध्यान दें तो परमजीत की जगह सही मायने में संजीवनी बेघर होती है। ''संजीवनी अपनी योनि के ज़रा–से फैलाव के बाद भी कुँवारी है, चरित्रहीन नहीं।''[71] संजीवनी परमजीत के साथ संबंध टूटने पर ज्यादा परिपक्व जान पड़ती है। वह सोचती हैः ''अब कभी कोई उसकी जिन्दगी में नहीं आएगा, कोई उसके नजदीक आकर नहीं बैठेगा।''[72]

पत्नी रमा उसकी निजता और पहचान को मिटाने में कोई कसर नहीं छोड़ती। फलस्वरूप परमजीत हृदयाघात से असामायिक मौत मर जाता है। ''परमजीत एक जिन्दगी जीता है और एक आम मौत मरता है। उपन्यास इस 'आम जिन्दगी' को ही एक खयाल बनाता है।''[73] परमजीत की ट्रेजेड़ी मध्यवींय व्यक्ति की ट्रेजेड़ी को उभारने में सक्षम हुई है। 'बेघर' अन्य आधुनिकवादी उपन्यासों की तरह ही एक संभोगवादी उपन्यास है।

आपका बण्टी (ई. 1971) – मन्नू भंडारी

'आपका बण्टी' मन्नू भंडारी द्वारा रचित संवेदनशील उपन्यास है। इस उपन्यास में आधुनिक बोध से प्रभावितं नारी का मानसिक संघर्ष, सामाजिक जीवन में व्याप्त विघटनात्मक

परिस्थितियों का वर्णन है। मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' उपन्यास में एक बच्चे की मनःस्थिति का अत्यंत मार्मिक शैली में निरूपण किया है। 'आपका बंटी' उपन्यास में बंटी, शकुन, अजय, कूकी, डॉक्टर जोशी, वकील चाचा, टीटू, मीरा, जोत एवं अभि आदि मध्यमवर्गीय पात्रों का समावेश किया गया है।

इस उपन्यास के अंतर्गत उजय और शकुन के बेटे के रूप में बण्टी को दिखाया गया है। अजय कलकत्ता में डिवीज़नल मैनेजर के पद पर कार्य करता है। अजय और शकुन दोनों में ही अहं की कुछ इतनी अधिक प्रबलता है कि वे दोनों विवाह के पश्चात् एक दूसरे से समझौता करने में असमर्थ रहते हैं और दोनों एक–दूसरे के समक्ष झुकना भी पसंद नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि शकुन अपने पुत्र बंटी को लेकर पृथक् हो जाती है और कलकत्ता छोड़कर एक–दूसरे नगर में आकर एक कॉलेज में अध्यापन कार्य शुरु कर देती है तथा शीघ्र ही अपनी योग्यता के बल पर उस कॉलेज में प्रिंसीपल बन जाती है। माता–पिता के अलगाव के कारण बंटी की पीड़ा के प्रति अपनी संवेदनशीलता लेखिका ने खुद बताई हैः ''इस पूरी स्थिति की सबसे बड़ी विड़म्बना ही यह है कि इन संबंधों के लिए सबसे कम जिम्मेदार औड़ सब ओर से बेगुनाह बंटी ही इस ट्रेजेड़ी के त्रास को सबसे अधिक भोगता है। शकुन–अजय के संबंधों का तनाव और चटख बंटी की नस–नस में ही प्रतिध्वनित होती है। स्थिति की इस विडंबना ने ही मेरे मन में एक आतंक जगाया था। शकुन–अजय के आपसी संबंधों में बंटी चाहे कितना ही फालतू और अवांछनीय हो गया हो, परंतु मेरी दृष्टि को सबसे अधिक उसीने आकर्षित किया। वस्तुतः उपन्यासकार के लिए अप्रतिरोध चुनौती, सहानुभूति और मानवीय करुणा के केन्द्र सिर्फ वे ही लोग हो पाते हैं, जो कहीं न कहीं फालतू हो गए हैं।''[74]

'आपका बंटी' में तलाकशुदा आधुनिक पति–पत्नी की समस्या को बच्चे के माध्यम से उठाया है। शकुन और अजय दोनों पुनःविवाह में बंध जाते हैं, लेकिन बण्टी दोनों परिवार में अपने को मिसफिट पाता है। बंटी की पहली प्रतिक्रिया अपनी मम्मी के प्रति हैः ''उसकी मम्मी अब उसकी नहीं रही, कोई और ही हो गई।''[75] मिसफिट होने की वजह से उसे बोर्डिंग स्कूल में जाना अनिवार्य हो गया। वहाँ जाने से पहले वज जिन मानसिक परिस्थितियों, तनाव, कुण्ठा, अंतर्द्वन्द्वों से गुजरता है, उसका कथाकार ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से निरुपण किया है। डॉक्टर जोशी शकुन के समक्ष संकेत करते हैंः ''बंटी थोड़ा प्रॉब्लम बच्चा है।''[76]

डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर ने यह भी स्वीकार किया है कि ''बंटी एक अतिशय संवेदनशील बालक है। ड्राइंग के प्रति उसका लगाव... विलक्षण जिद्दी स्वभाव, मान–अपमान के प्रति अतिशय जागरुकता.. आत्माभिमान का प्रखर मान, अपने को बड़ों द्वारा विशेषतः मम्मी द्वारा उपेक्षित अथवा दुर्लक्षित किये जाने का अहसास... ये कुछ ऐसे स्वभाव वैशिष्ट्य हैं जो बंटी के उम्र के लिहाज से प्रौढ़ता देते हैं और विशिष्टता भी।''

बंटी के द्वारा बालसहज औत्सुक्य भी दिखाया जाता है। 'आपका बंटी' उपन्यास के प्रारंभिक पृष्ठों के अवलोकन से ही स्पष्ट हो जाता हैः माता–पिता का क्या झगड़ा है, तलाक क्या होता है, पौधे कैसे बढ़ते हैं, मम्मी कभी–कभी रोती क्यों है? पति–पत्नी का मनमुटाव और उससे उथ्पन्न बच्चों की दयनीय स्थिति को लेकर डॉ. हेमचंद्र जैन ने लिखा हैः ''इन दोनों के बीच बण्टी अपने आपको सदैव अनजाना, अनचाहा महसूस करता है। बण्टी मम्मी के पास रहते हुए भी पापा के प्यार का आकांक्षी बना रहता है और बाप से मिलने के लिए भी माँ के प्यार को पाते रहने की चाह उसके मन में बनी रहती है। मन्नू भंडारी ने जहाँ एक ओर शकुन के मन की कसक को चित्रित किया है, वहीं दूसरी ओर छूटती चीज़ों के प्रति बण्टी के मोह को भी पूरी मनोवैज्ञानिकता से चित्रित किया है। अपने आसपास की सभी वस्तुओं के विषय में जानने की बण्टी की तीखी जिज्ञासा व तीव्रता से बदलने वाली अपनी स्थितियों के साथ एडजस्ट न हो पाने के दर्द को भी लेखिका ने बड़ी कुशलता से शब्दबद्ध किया है। बालक मन का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण सामान्यतः सफल रहा है।''[77]

डॉ. सुरेश सिन्हा ने भी बण्टी की व्याथा को, मनोदशा को अपने शब्दों में चित्रित किया है। ''वह अपनी आयु से कहीं ज्यादा देखता, सोचता और अनुभव करता है। इस प्रक्रिया में वह सर्वाधिक प्रतिभासंपन्न या अनुभूति–प्रवण बालकों को भी पीछे छोड़ जाता है, इसीलिए पूर्णतया काल्पनिक एवं अविश्वसनीय लगता है। डॉ. जोशी को पापा न कह पाने की यंत्रणा तो ठीक है, पर पापा के संदर्भ में मम्मी के उतार–चढ़ाव एवं सूक्ष्म अनुभूतियों का विश्लेषण करना, सेंट की घटना, अपने पापा परिवर्तित परिस्थितियों में विस्तार से विवेचन करना, कलकत्ते जाने पर अपनी नई मम्मी को 'वे' का संबोधन देने का गांभीर्य, बहुत तर्कसंगत या स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता।''[78]

आज के जीवन में व्याप्त परिस्थितिजन्य विवशता, गंभीरता, उदासी, खालीपन के कारण व्यक्ति मन ही मन टूटता जाता है। इस उपन्यास में एक ओर शकुन के माध्यम से मध्यमवर्गीय आधुनिक नारी की पीड़ा संवेदना को उजागर किया है तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन की कृत्रिमता और खोखलेपन के भयावह संत्रास को कैद करने की कोशिश की है। उपन्यास के विविध पात्र अपनी उलझनों में फँसकर भी अपनी पूरी क्षमता के साथ संघर्षरत दिखाई देते हैं। बण्टी को संवेदनशील, भावुक, महत्वाकांक्षी एवं अहमी पात्र के रूप में रूपायित किया हैः ''माता–पिता की तरह वह भी दूसरे को पराजित करने तथा अपने को विजयी देखने में आत्म–सुख का अनुभव करता है। अतः बंटी के व्यक्तित्व को उसके माता–पिता के आचरण ने प्रभावित किया है। दूसरी बात यह है कि बंटी मध्यवर्ग का व्यक्ति है। मध्यवर्ग भीतर से आत्मविभाजित होता है। उसके चरित्र में स्पष्टता का अभाव होता है। इस वर्ग में भी व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की प्रधानता हो रही है। बंटी के आत्मविश्वास और हम दो मध्यमवर्गीय जीवन ने भी प्रभावित किया है।''[79]

'आपका बंटी' की जो विशेषता उसे अधिक महत्वपूर्ण और सार्थक बनाती है, वह शकुन की जटिल चरित्र–सृष्टि है, जिसके कारण इसकी वस्तु के ट्रीटमेंट में व्यंजना की कला का अत्यन्त प्रौढ़रूप मिलता है।''[80]

इस प्रकार इस उपन्यास में देखते हैं कि बण्टी अपनी ही आंतरिक पीड़ा, मानसिक द्वंद्व की वजह से डॉ. जोशी और मम्मी के बीच अपनी व्यर्थता को पूरी ईमानदारी से स्वीकार करता है। इन दोनों के बीच अपने को मिसफिट पाता है। माँ–बाप के बीच सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाने के कारण वह अपने आप को आलग या कटघरे में पाता है। ''आपका बण्टी' एक मासूम जिन्दगी की यथार्थपरक ट्रेजेड़ी हैं जो अनुभूति के धरातल पर ठहरी हुई है।''[81]

'आपका बण्टी' उपन्यास में संकेत किया है कि तलाक लेनेवाले स्त्री–पुरुष की सामाजिक स्थिति चाहे कितनी ही उच्च क्यों न हो, अधिकांश व्यक्तियों की दृष्टि उनके प्रति सहानुभूति की न होकर निंदा और भर्त्सना की ही होती है। 'आपका बंटी' में लेखिका ने यह भी स्पष्ट किया है कि तलाक युक्त संतानवाली स्त्री का पुनर्विवाह तो असामंजस्य की स्थिति उत्पन्न करता ही है, पर यदि यह विवाह किसी ऐसे पुरुष से हो जिसकी पहले से जीवित संतानें हों, तो फिर उस स्त्री के जीवन में त्रास, संघर्ष और घुटन आदि की मात्रा बढ़ सी जाती है। शकुन के पात्र के माध्यम से लेखिका

यही दिखाने की कोशिश करती हैं। इस प्रकार 'आपका बंटी' एक सकल सामाजिक उपन्यास है और उसे आधुनिक उपन्यास साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जा सकता है।

मेरी तेरी उसकी बात (ई. 1974) – यशपाल

'मेरी तेरी उसकी बात' (1974) नामक उपन्यास में यशपाल ने राष्ट्रीय आन्दोलन का विषय मुख्यतः विषय वस्तु के रूप में पसंद किया है। इसमें विभाजनपूर्ण (ई. 1928 से 1946 तक) की परिस्थितियों का वर्णन किया है।

उपन्यास में सेठ रतनलाल के पारिवारिक जीवन और इशा नर्तकी के प्रेम–प्रसंग से शुरु होता है। रतनलाल सेठ लखनऊ के बड़े रईस आदमी है। उनकी दूसरी शादी उनका बेटा अमरनाथ सेठ मेडिकल शिक्षा के अन्तिम वर्ष का छात्र है। ईशा से रतनलाल सेठ की एक बेटी रतनी भी है, जो सेठजी के कारिन्दे अब्दुल लतीफ से ब्याही है। दूसरी पत्नी के मृत्यु के बाद अपनी बहन की सहायता से अमर को पाल–पोस कर बड़ा किया। पं. माथुर प्रसाद और वकील कोहली राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थक थे। वे अमर के शिक्षक होने के कारण उनसे राष्ट्रीय आन्दोलन के समाचार सुनता रहता था। इस उपन्यास में हरिबाबु के प्रसंग का वर्णन है जो कँग्रेस कार्यकर्ताओं की रिश्वतखोरी के खिलाफ भूख–हड़ताल कर देता है। अमर का काँग्रेस पार्टी के अधिवेशन में मराठी युवती मौली के साथ मित्रता, उषा और अमरशेठ की मैत्री का वर्णन मिलता है। उषा के पिता धर्मानन्द पण्डित समाजवादी विचारों को पसंद नहीं करते। इस कारण अमर का वहाँ आना पसंद नहीं करते। उषा पर परिवार की ओर से बंधन बढ़ने लगते हैं, उषा व अमर में प्रेम संबंध और भी गहरा होता जाता है। क्रोध में आकर उषा अपना सिर फोड़ लेती है। उसे अस्पताल में भर्ती करवाया जाता है लेकिन वहाँ से घर वापस न आकर अमर से शादी कर लेती है। इस प्रकार यहाँ पर मध्यमवर्गीय समाज में युवा पीढ़ी परंपरागत रुढ़िचुस्त नियमों को तोड़कर जाति–पाँति का विरोध कर अपनी पसंद से प्रेम विवाह करते हैं।

1939 के अधिवेशन कांग्रेस में सुभाष बोझ अध्यक्ष चुने जाते हैं, किन्तु गाँधी के असहयोग के कारण उन्हें त्यागपत्र देना पड़ता है। इस अधिवेशन में माया घोष और रुद्रदत्त पाठक का परिचय हमें मिलता है। उषा को अपने वैवाहिक जीवन में गौरी की, अपने ससुर की उपेक्षा का

भोग बनता हुआ दिखाया गया है। अमर का जेल जाना, उस समय नरेन्द्र उषा से मिलते-जुलते रहता था। गौरी को वह नापसंद था। अमर के जेल से छुटकर आने के बाद अमर और उषा में तनाव शुरु हो जाता है। उषा द्वारा नरेन्द्र का जिक्र भी अमर को उत्तेजित कर देता है। अमर के मन में पनप रहे संदेह को उषा दूर करने के प्रयास के बावजूद भी इस तनाव को दूर नहीं कर सकती। मध्यवर्गीय परिवारों में आधुनिकता के कारण सोच-विचार में जो अंतर है इस वजह से उनका दाम्पत्य जीवन तनावपूर्ण रहता है। अमर द्वारा रखे गये शारीरिक प्रस्ताव को उषा ठुकरा देती है। इसी विक्षिप्तावस्था में अमर मोटर साइकिल दुर्घटना में मर जाता है। अमरनाथ सेठ की मृत्यु के आघात के कारण रतनलाल सेठ भी चल बसते हैं। रतनलाल सेठ की जायदाद पर भाई-भतीजों की नजर होने के कारण उषा अपने छः साल के बेटे के साथ अब ससुराल में ही रहती है। वकील कोहली और गंगा बुआ की सहायता से उषा धन, जेवर की रक्षा करती है। पारिवारिक झगड़े में मुकदमा होता है, उषा को इस दुःखद अवस्था में भी अदालतों में फज़ीहत करवानी पड़ती है। अमर के साथ सम्बन्धों की वफादारी को उषा स्टुडेण्ट काँग्रेस की सहायता करके निभाती है। कम्युनिस्ट पार्टी को 'गद्दार' कहने के कारण उसका बहुत विरोध होता है, उसे भूमिगत हो जाना पड़ता है। उपन्यास के अंतिम छोर में उषा के बम्बई जीवन की विस्तृत चर्चा है। उषा और पाठक के घनिष्ट सम्बन्ध के बारे में दिखाया है। काँग्रेसी मंत्रीमंडल बन जाने के बाद उषा और पाठक भूमिगत जीवन से बाहर आ जाते हैं। उषा और पाठक विवाह का निर्णय करते हैं, लेकिन उषा का ध्यान एक घटना पर जाता है। गली में एक लड़के ने अपनी माँ का किसी अन्य व्यक्ति के साथ सम्बन्ध होने से हत्या कर दी थी। अंत में बेटे के लिए वह 'अपनी बलि' देने का निर्णय लेती है और पाठक से विवाह नहीं करने का निर्णय करती है। ''मेरी तेरी उसकी बात' में यशपाल ने नारी की सामाजिक स्थिति तथा नारी मुक्ति के प्रश्न पर भी विचार किया है। यह प्रयास 'झूठा सच' से प्रारम्भ हुआ दिखाई देता है जिसमें तारा जड़ता और दासता को तोड़ना चाहती है। 'मेरी तेरी उसकी बात' में यह कार्य उषा करती है और नारी मुक्तिको सामाजिक राजनीतिक संघर्षों से जोड़ देती है।''[82]

यहाँ पर अमर, उषा और रज़ा उस मध्यमवर्गीय पात्रों की तरह हैं जो पुरानी रुढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह और नयी मान्यताएँ स्थापित करनेवाले धर्मनिरपेक्ष चरित्र हैं।

अमर को यहाँ पर उस मध्यवर्गीय पुरुष की तरह दिखाया है कि जो पहले अपनी पत्नी को स्वतंत्र विचारधारा पर चलने के लिए प्रेरित करता है लेकिन बाद में वह उसे दबाने की कोशिश करता है। उषा भी मध्यमवर्गीय नारी की तरह अपने आपको सामाजिक परिस्थितियों के सामने विवश, बेबस पाते हैं। ''मैं बेटे की भावना को अपने संतोष के लिए बलि न होने दूँगी... बलि होगी तो मेरी।''[83]

डॉ. विवेकी राय 'मेरी तेरी उसकी बात' को नारी प्रधान उपन्यास मानते हैं। उनका मत है कि ''यशपाल ने 'पति' नामक संस्था के सड़े सामन्तवादी अधिकार भावोन्माद को खूब नंगा किया है।''[84]

'मेरी तेरी उसकी बात' की बात भी यशपाल के अन्य उपन्यासों की तरह मध्यवर्ग के जीवन तक ही मंडराती है। इन सब चरित्रों में मध्यवर्गीय गुण दृष्टव्य है – जैसे जीवन के आरम्भ में वे साहस दिखाते हैं, कुछ वर्षों बाद साहस खोकर जीवन से समझौता कर लेते हैं। मध्यवर्गीय व्यक्ति की चेतना उभरने के कारण सभी पात्र संघर्षरत हैं। इस प्रकार यशपाल को मध्यवर्ग के उपन्यासकार का स्थान दे सकते हैं।

पत्थरों का शहर (ई. 1971) – सुरेश सिन्हा

नई पीढ़ी आधुनिकता के कारण दीशाहीन भावना से ग्रसित 'पत्थरों का शहर' में सुरेश सिन्हा ने नई पीढ़ी के दिशाहीन भटकाव का बड़ा ही अनुभूतिपूर्ण चित्रण किया है।

'पत्थरों का शहर' उपन्यास में आज के मध्यवर्गीय परिवारों में देखने को मिलता पुरानी और नई पीढ़ी में प्रवर्तमान संघर्ष को चित्रित किया गया है। संघर्ष के कारण प्रवर्तमान विभिन्न समस्याओं को सिन्हाजी ने यथार्थ रूप में दिखाने का प्रयत्न किया है। आज की पीढ़ी के मूल्य बदलने लगे हैं। प्राचीन मान्यताएँ, रुढ़ियों एवम् अंध विश्वासों में उन्हें विश्वास नहीं है। इस उपन्यास में 'नवल बाबू' प्राचीन मूल्यों और परम्परा को पकड़े रहने की कोशिश में लगे रहते हैं और उनके युवा बेटे – बहुएँ तोड़ने में। उच्च मध्यम वर्ग के परिवार की कथा इस उपन्यास में निहित है। परिवार के कर्ताधर्ता के रूप में नवल बाबू हैं। ''नवल बाबू अधिकारी पद से रिटायर होकर दिल्ली अपने परिवार वालों के साथ रहने के लिए 'वतन विला' में वापस आते हैं। नयी

पीढ़ी नई हवा में झूल रही है। लेकिन उनके साथ रहने के लिए वह विवश हैं। ''सप्ताहभर के भीतर ही नवलबाबू को लगने लगा था कि वे अपने घर में नहीं किसी सराय में वापिस आये हैं, जहाँ किसी से उनका नजदीक का भी रिश्ता नहीं है, लड़के हैं तो उनका कोई मिज़ाज ही नहीं मिलता। लड़कियाँ हैं तो इतनी सिरचढ़ी हो गयी हैं, जैसे उन्हें पराये घर में जाना ही नहीं है। कभी-कभी घर उन्हें अच्छा-खासा जूँ लगने लगता या कोई ऐसा संग्रहालय जहाँ की प्राचीन पाषाण-मूर्तियों को समझना एकदम दुत्कर कार्य है।''[85]

अलगाव भाव की स्थिति को विवेक भी महसूस करता है, जब शिक्षा प्राप्त कर घर वापस लौटता है। ''उस दिन आने पर उसे घर बड़ा अपरिचित सा लगा। अपने मन की गांठ बिलकुल नहीं खोल पाया था और उसे जाने क्यों लगा था कि घर एक बड़ा संग्रहालय है।''[86]

नवल बाबू के घर की स्थितियाँ हमेशा तनावपूर्ण रहती थी। पारस्परिक समझ के अभाव में रिश्तों की डोर हाथ से छूटती जा रही थी। कभी पिता-पुत्र में अनबन, कभी पति-पत्नी में झगड़ा। घर में तनाव के वातावरण में सबको अपनी अपनी ही पड़ी है। नवल बाबू के परिवार में परंपरागत समाज में चले आनेवाले मूल्यों, रुढ़ियों एवम् परम्पराओं की रक्षा करना चाहते हैं, लेकिन घर की युवा पीढ़ी, नयी पीढ़ी उसे तोड़ने के लिए कटिबद्ध है, इसका नतीजा यह आता है कि नवलबाबू के सामने मूल्यों से रहित युवा पीढ़ी टीक नहीं पाती। उसके सामने कोई निश्चित दिशा न होने के कारण यह विद्रोह घिनौना रूप धारण कर लेता है। नवल बाबू का संयुक्त परिवार बिखर जाता है। पुत्र मनोज और पुत्रवधू तृप्ता में नहीं पटती और पुत्रवधु घर छोड़ जाती है। पुत्री इति एक हिप्पी ऑस्ट्रेलियन के साथ विदेश चली जाती है। उसे भी अस्वीकार कर स्वदेश वापस चली आती है। पौत्र रवि पढ़ाई-लिखाई छोड़कर आवारा हिप्पी बन जाता है। सभी घरवाले मानों उनकी उपेक्षा करने पर उतारु हैं।

मध्यमवर्ग में समाज के सामने प्रदर्शन भावना ज्यादा होती है। नवल बाबू और उनके परिवार का आत्म प्रदर्शन अन्नपूर्णा देवी की मृत्यु की घटना के समय देखने को मिलता है।

मध्यमवर्गीय पीढ़ी हमेशा उच्चवर्ग के समक्ष पहुँचने को प्रयत्नशील रहती है। यहाँ पर तरुण रवि इसी विकृत आधुनिकता का परिचायक है। वह समृद्धि को शोर्टकट से पाने के लिए संयम और विवेक दोनों को ठुकराता है। आखिर में उसे जेल भी जाना पड़ता है। यहाँ पर लेखक

मध्यमवर्गीय समाज में जो अलगाव की समस्या है, इसे उपन्यासकार ने उठाया है। नवल बाबू और उनकी पत्नी अन्नपूर्णा देवी परिवार की इस दुर्गति से व्यथित हो जाते हैं। अन्नपूर्णा देवी की मृत्यु हो जाती है लेकिन नवल बाबू हताश न होकर एक फर्म में नौकरी करने लगते हैं।

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने युवा पीढ़ी के आक्रोश, असंतोष का वर्णन किया है। जो आदर्श और मान्यताएँ युवा विद्यार्थियों के सम्मुख रखे जाते हैं उसी पर कहनेवाले अनुशासन में नहीं रहते तब युवापीढ़ी भड़क उठती है। ''डिग्री नहीं, नौकरी चाहिए।''[87] तब उन्हें दबा दिया जाता है। उपन्यासकार ने एक जगह दिखाने की कोशिश की है :''सिक्योरिटी फोर्स के सैनिक भागते हुए विद्यार्थियों को जबरदस्ती पकड़-पकड़ कर पीट रहे थे। लड़कियों की साड़ियाँ ब्लाउज़ खुले आम फाड़ दिये गये थे और सैनिकों तथा पुलिस ने सामूहिक रूप से चूमा-चाटी और बलात्कार का कार्यक्रम प्रारंभ कर दिया था.... नृशंसता की हद हो गई थी। उस दृश्य को देखकर कोई कह नहीं सकता था कि स्वतंत्र भारत के सैनिकों और पुलिस का अपने ही देश के नागरिकों के साथ यह व्यवहार है।''[88] यहाँ पर आज के राजनैतिक व्यवस्था के खोखलेपन का चित्र उभरकर हमारे सामने आता है। उसका घिनौना रूप देखने को मिलता है। डॉ. राममनोहर लोहिया ने विद्यार्थियों के मारपीट वाले प्रसंग पर सहानुभूति की जगह व्यंग्य करते हुए देखने को मिलता है। ''कौन कहता है कि लोकतन्त्र की रक्षा यह कॉंग्रेसी सरकार नहीं करती? जब लोग थोड़ी अपनी कुर्बानी देते हैं और उसके सिर पर चढ़ जाते हैं, तो उसकी कुम्भकर्ण जैसी नींद टूटती है और वह कुछ दे देती है।''[89]

इस उपन्यास में विववेक के माध्यम से मध्यवर्गीय समाज में प्रवर्तमान बेकारी की समस्या को भी उठाने का प्रयत्न किया गया है। विवेक को बेकारी की अवस्था में दिल्ली में नौकरी पाने के लिए जिस कदर भटकना पड़ता है, वह आज के युवा पीढ़ी की नियति बन गई है। विवेक के माध्यम से कॉंग्रेसी नेताओं के भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनीति-पूर्ण व्यवहार को उजागर किया है। विवेक ने ठाकुर साहब को राजनीतिक खिड़की से भली-भाँति देखा था। उसे लगता था कि जाने कैसा समाजवाद भारत में लाने की कोशिश की जा रही है। ''जो फ्लेट में रहते थे, अब बंगलों में रहने लगे हैं। जो बंगलों में रहते थे, एयर कण्डीशनर कोठियों में रहने लगे हैं। उधर जो झुग्गी-झोंपड़ी में रहता था, वह फुटपाथ पर रहता था, वह बिना कफन शमशान घाट पहुँचा

दिया गया। आज़ादी के 22 वर्षों की सबसे बड़ी देन यह है कि लाइन बिटविन पेंगर एण्ड हेंगर इज़ थिनिंग डाऊन... और हम देश में नया समाजवाद ला रहे हैं।''[90]

आधुनिक नारी आज अपनी कारकिर्दी के क्षेत्र में इतनी महत्वाकांक्षी हो गई है कि उसमें बाधकरूप होने वाले कोई भी व्यक्ति चाहे वह उसका पति ही क्यों न हो, उसको छोड़ देती है। इस उपन्यास में नवल बाबू की पुत्रवधू तृप्ता अपनी चित्रकला के विकास में अपने पति मनोज को बाधकरूप मानकर उसे छोड़कर चली जाती है। अपने स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने पर अन्ततः वास्तविकता स्वीकार करती हुई कहती हैः ''आधुनिकता के नाम पर अपना सबकुछ गँवाकर ही मैंने यह समझा है... हम परिवार और पति के प्रति पूर्ण निष्ठावान होकर भी अपनी निजता और स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा कर सकते हैं।''[91]

जनसंघी विचारों का प्रतिनिधित्व करनेवाले नितिनभाई ने, जो नई पीढ़ी अंधेरे में चीखती है, दिशाहीन है, उसके बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हैः ''आज़ादी के पिछले बीस वर्षों में हम अपने बच्चों के लिए कर ही क्या पाए हैं। हमने उन्हें सिर्फ धोखा दिया है और उन पर अविश्वास प्रकट किया है। हमने लच्छेदार भाषण जरुर दिया है, लेकिन कभी उन्हें जिम्मेदारी संभालने का मौका देने को तैयार नहीं हुए हैं। और तो और, हम वह शिक्षा प्रणाली तक नहीं बदल सके; जो लॉर्ड मैकाले ने सिर्फ क्लर्क पैदा करने के लिए बनाई थी.. स्वतंत्रता के बाद हमने उन्हें कौन–सा रचनात्मक कार्यक्रम दिया है? उनके सामने भविष्य क्या है... हमारे बुजुर्गों ने आदर्श प्रस्तुत करने के नाम पर स्मगलिंग, देशद्रोह, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, भाई–भतीजावाद तथा विधान सभाओं एवं संसद में लात–जूते और गाली–गलौज प्रस्तुत किया है। ऐसी पीढ़ी से आप और क्या उम्मीद ही कर सकते हैं?''[92]

इस प्रकार सिन्हाजी का 'पत्थरों का शहर' महानगर दिल्ली के उच्च मध्यमवर्गीय परिवार के साथ–साथ पूरे देश की भ्रष्टाचार को व्यक्त करता उपन्यास है। यह उपन्यास आज की मध्यमवर्गीय नई पीढ़ी की बाह्य और आन्तरिक जिन्दगी के विविध द्वन्द्व को प्रस्तुत करता है।

गैंडा (ई. 1978) – शिवानी

आज के बहुचर्चित महालेखिकाओं में शिवानी का नाम लिया जाता है। ''कुमायूँ की सुन्दर घाटियों में रहनेवाली इस लेखिका का पूरा नाम श्रीमती गौरापांत शिवानी। शिवानी को जन्म दिया सौराष्ट्र ने, वाणी दी कुमायूँने और अभिव्यक्ति दी हिन्दी ने।''[1] 'चौदह फेरे', 'कैंजा', 'शय्यामणि' और 'गैंडा' उनके बहुचर्चित उपन्यास हैं।

''पारिवारिक जीवन की यथार्थ गुत्थियों को सुन्दर ढंग से सुलझाया है शिवानी ने। नारी जीवन की परिवर्तित मनःस्थितियों को और उसकी दमित इच्छाओं को खुले रूप से बड़े साहस के साथ, किन्तु एक विशिष्ट सौजन्य से परिपूर्ण शैली में शिवानी ने अभिव्यक्त किया है। उनकी रचनाओं में से वेदनात्मक अनुभूतियों का सर्वाधिक्य है। सामाजिक विषमता, पति–पत्नी के सम्बन्धों और प्रेम के विविध पक्षों का उद्घाटन उनकी रचनाओं में हुआ है। उनके लघु उपन्यासों में संघर्षशील एवं टूटते परिवार की मार्मिक कथा है। शिवानी ने अपनी रचनाओं में जिन चरित्रों का निर्माण किया है, वे यथार्थ जगत से ही लिए गये हैं। पुरानी मान्यताओं के प्रति एक ओर उनमें विरोध है, दूसरे ओर वे कहीं–कहीं अपनी कथा–चेतना अतीत से चिपकी हुयी है।''[94]

'गैंडा' कहानी में शिवानी सुवर्णादत्ता नामक आधुनिक मध्यमवर्गीय शिक्षित नारी की आंतरिक मनोव्यथा को उद्घाटित किया है। यह एक ऐसी नारी की कथा है जो किसी भी व्यक्ति को कोमल हृदय को छुअे बिना नहीं रह सकती, उसको झकझोर कर रख देती है। 'गैंडा' में शिक्षित नारी की विभिन्न समस्याओं को सुवर्णदत्ता के माध्यम से जमा को आहत करवाया है। ''आज के व्यस्त जीवन में नारी के वास्तविक यथार्थ को अभिव्यक्त किया है, शिवानी ने जिसे आम तौर पर कोई देखता नहीं।''[95]

'गैंडा' में सुवर्णादत्ता का विवाह मेजर दत्ता से हुआ है। उसका व्यक्तित्व भी उसके पद के समान ही प्रभावशाली था। सुवर्णा का दाम्पत्यजीवन सुखी था। सुवर्णा और मेजर दत्ता की दो लड़कियाँ भी थीं। सुवर्णा के सुखी दाम्पत्य जीवन में उसकी ही बचपन की सखी राज का प्रवेश होने से पति–पत्नी के बीच आपसी तनाव शुरु हो गया । ''गैंडा में दो विभिन्न प्रवृत्तियाँ स्वभाव रूचि और आदत की दो नारियों के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। दोनों ने के.जी. से लेकर सीनियर कैम्ब्रिज तक साथ–साथ शिक्षा प्राप्त की थी, किन्तु इस सह शिक्षा में सदा ही

द्वितीय पुरष्कार मिला सुवर्णा को, किन्तु दोनो में गहरी प्रतिद्वन्द्वता होने के बावजूद दोनों की मैत्री अन्त तक अक्षुण्ण रही थी। पर जीवन की भागदौड़ में सुवर्णा को लगा नहीं था कि राज यहाँ पर भी उसे पराजित कर देगी।''[96] राज का पति वेद उसे सुवर्णा के घर ठहराकर विदेश चला जाता है। एक ही घर में रहते ही राज ने सुवर्णा के पति को अपने मोहपाश में कर लिया। ''विवेकी से विवेकी पुरुष की नरता, शौर्य, बल, औतत्व को वह अपनी अशक्त अंगुलियों से घिस्स सा ही मसल सकती थी।''[97] साठोत्तरी बहुत से उपन्यासों में पति-पत्नी के संबंध किसी तीसरी व्यक्ति के कारण उलझते दिखाये गये हैं, यहाँ पर भी मेजर दत्ता राज के सौन्दर्य पर हावी होकर दाम्पत्य जीवन में अनेक समस्याओं को आमंत्रण देता है। लेकिन उन सारी समस्याओं को सुवर्णा को ही उठानी पड़ती है। अपने ही पति को किसी दूसरी औरत के बाहुपाश में देखना सुवर्णा के लिए असह्य था। उस समय उसकी अन्तः व्यथा का निरुपण लेखिका ने इस उपन्यास में किया है। सुवर्णा दत्ता ने राज और मेजर दत्ता को अलग करने के लिए सभी प्रयत्न किए। वह वेद को भी समझाती है। ''राज मूर्ख नहीं है, पर तुम भी इतनी बड़ी मूर्खता करोगे, यह मैंने कभी सोचा नहीं था । छिः छिः उस दौ कौड़ी की नौकरी के लिए वह तुम्हें किस दुस्साहस से छोड़ रही है। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। वेद घर जाकर उसे समझाओ और साथ ले आओ।''[98] लेकिन राज किसी के भी समझाने से न समझी और वह वहीं मेजर दत्ता के पास ही रुक गयी।

हम हमेशा देखते हैं कि मध्यवर्गीय व्यक्ति जब प्रयत्न करने पर भी अपनी सारी समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ रहता है तब वह अंध-विश्वास, पुरानी आस्था की तरफ झुकती है। यहाँ पर सुवर्णा भी आखिर में थककर ऐसा ही रास्ता अपनाती है। ''अन्त में उसने ऐसा रास्ता अपनाया जो नारी को चिर परिचित स्वरूप को सामने रखता है।''[99] ''वह गयी नीम तले के मौलवी के पास और वहीं से एक ऐसा कराज लायी जिसे केवल एक बार लांघा जाना चाहिए था। बड़े साहब ने उसको गाड़ा था। सुवर्णा ने और उसके ही आँखों के सामने लाँघा था राजने उसे, और मौलवी साहब के शब्द याद आये। अगर एक बार लांघ गयी तो चीज पा लोगी।''[100] तब महीने के अंदर ही सुवर्णा ने अपनी मन की इच्छा को धार्मिक श्रद्धा के साथ पूर्ण रूप से पा लिया। राज को उसी महीने में फूड़ पॉइज़निंग हो गया। रोहित को शक होता है कि सुवर्णा ने राज को खाने में ज़हर दे दिया। लेकिन वह निर्दोष थी।

तीन दिन बाद वेद जब घर आता है तब सारी घटना को चुपचाप सुनता है और राज की सारी चीज़ों को निर्धन लोगों में बाँट देने की सूचना देकर घर से बाहर निकल जाता है। उसके जाने के बाद सुवर्णा को मन के भीतर महसूस होता है, ''प्रवास के किसी जनशून्य अरण्य में भटक रहा आज का घायल गैंडा अपनी आहत दृष्टि से उसे देख रहा है। पहले उसके होंठ काँप रहे हैं, फिर आकारहीन चिबुक, फिर परस्पर जुड़ी अनाकर्षक छनी भौंहें और फिर वह निष्कपट बदनुमा चेहरा रुदन की सहस्त्र विकृत झुर्रियों में एकदम ही सिकुड़ गया।''[101] सुवर्णा मन ही मन राज के मृत्यु के लिए अपने आप को अपराधी मानती है। इस प्रकार शिवानी कृत 'गैंडा' उपन्यास आधुनिक मध्यमवर्गीय नारी की मनोदशा का वर्णन बखूबी करता है। पति–पत्नी के दाम्पत्य जीवन में तीसरे के प्रभाव से किस प्रकार दरार पड़ जाती है, इस वजह से पत्नी को विविध समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उसका निरूपण इस उपन्यास में मिलता है।

इन उपन्यासों के अलावा इस दशक के उपन्यासकारों के आलोच्य उपन्यासों में मध्यमवर्गीय परिवारों का विवरण मिलता है। उनकी मानसिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिस्थिति का निरूपण किया गया है।

'चिड़ियाघर' गिरिराज किशोर का लघु उपन्यास है। उपन्यास का कथानक एक सरकारी कार्यालय से संबंधित है। कार्यालय की विरुपताओं के माध्यम से लेखक हमारे समाज और देश की स्थिति का वास्तविक परिचय दिया है। मध्यमवर्ग में प्रवर्तमान रिश्वतखोरी को भी उजागर किया है। जौहरी के पास किले की नौकरी के लिये प्रत्याशी महेतर कपड़ों के भीतर से पाँच रूपये का मुड़ा–लुड़ा गंदा नोट बड़ी सावधानी से उसकी मेज पर सरका कर कहता है: ''लोगों का कहना है, जब अफसर के पास पहुँच जाता हूँ तो आधा काम वैसे ही हो जाता है...''[102]

'चिड़ियाघर' उपन्यास में आधुनिक भारत की कुछ राष्ट्रीय समस्याओं को उठाया गया है। जिसमें मध्यवर्ग से संबंधित ज्यादा हैं, जैसे बेकारी और नौकरी प्राप्त करने की समस्या, प्रशासनिक अव्यवस्थाएँ और दफतरों में ऊपर से नीचे तक व्याप्त भ्रष्टाचार और घुसखोरी की समस्या इन सबसे जुड़ी है, बुद्धिवादी मध्यवर्ग के अस्तित्व की समस्या। इन समस्याओं को लेकर ही डॉ. पुरुषोत्तम दुबे ने तात्पर्य निकाला है: ''चिड़िया घर के लेखक ने बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के वैयक्तिक, भौतिक सुखवादी जीवन के संदर्भ में अर्थगत आधार पर संश्लिष्ट व्यक्ति चेतना

को वर्ग में विशेषतः मध्यवर्ग में प्रतिष्ठित करते हुए उसे वृत्तिपरक दिशा में अपने अस्तित्व के साधनों की खोज में प्रवृत्त बतलाया है।''[103]

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित के उपन्यास 'मुरदाघर' ने शहरी जीवन की एक पुरानी समस्या को सशक्त रूप से उठाया है। मध्यवर्गीय समाज में आर्थिक समस्या के कारण प्रवर्तमान वेश्या समस्या को उठाया गया है। ''इसमें मध्यवर्गीय अथवा उच्चवर्गीय समाज के खोखलेपन तथा निम्न वर्ग की विवशता, वेदना, कराह को इस प्रकार पाठक के सामने लाकर रख दिया है, जो इन बातों की तरफ से बेखबर सोये हुए पाठक को झकझोर कर जगा देती है।''[104]

'कुछ जिन्दगियाँ बेमतलब' जो ओमप्रकाश दीपक का उपन्यास है। यह उपन्यास आर्थिक दबाव को जीवनभर झेलते-टूटते निम्न मध्यमवर्गीय पीड़ा को व्यंग्य के साथ प्रस्तुत करता है। मध्यवर्गीय जीवन की यातना और घुटन को घसीटा की जिन्दगी के माध्यम से उजागर किया है। घसीटा की जिन्दगी बेमतलब है, वह संसार के कटु यथार्थ का शिकार है। उसे बिना अपराध पीटा और जेल में बंद किया जाता है। उसके लिए जीवन रस निचुड़ गया है कि ''बिस्कुट चबाने पर उसे लगता है जैसे वह कागज की लुगदी चबा रहा है। इस तरह हर चीज़ उसके लिए स्वादहीन हो गयी थी।''[105]

रामदरश मिश्र के उपन्यास 'पानी के प्राचीर' में उन्होंने मध्यमवर्ग के सामने प्रवर्तमान नौकरीपेशा की समस्या को उठाया है। 'पानी के प्राचीर' का 'नीरू' नौकरी की तलाश में है। ''नीरू ने थोड़ा सा सत् लिया और दो सेर आटा। चल पड़ा शहर की ओर।''[106] नीरु की प्रथम श्रेणी होते हुए भी उसे नौकरी नहीं मिलती है, वह भी उसके सरल स्वभाव के कारण छूट जाती है। उपन्यासकार के शब्दों में ''उसकी दशा- गन्दा फटा कुरता, मामूली सी धोती, चमरौधा जूता, हाथ में पुराने किस्म का झोला, धूल-धक्कड़ से भरे हुए पाँव।''[107] यह चित्र आज की निम्न मध्यवर्ग की उस युवा पीढ़ी का है, जो गाँव से शहर की ओर आ रही है।

'कितने चौराहे' में मध्यवर्गीय समाज के आर्थिक तनावों से निर्मित कुंठाओं का चित्र है। मोहरिल मामा अपनी बेटी की शादी पाँच सौ रुपये के लिए दो बच्चेवाले आदमी से कर देना चाहता है। इस प्रकार मध्यवर्गीय व्यक्ति आर्थिक तनावों को झकझोरा जाता है। अपनी बेटी तक बेच डालता है, बेटी की आशा, आकांक्षा की ओर ध्यान देने के लिए उसमें ताकत नहीं है।

मध्यवर्गीय समाज की आर्थिक स्थिति के कारण यह दशा है, जो अपने अतिथि के साथ अच्छा बर्ताव तक नहीं कर पाते, घर में कुछ कमी होने के कारण लाचार रहते हैं, विवश रहते हैं। इस उपन्यास में भी मोहरिल की पत्नी भी अपने घर आये मेहमान का उचित प्रबन्ध नहीं कर पाती, जिससे उसकी लाचारी, कुण्ठा का उद्वेलन देखने को मिलता है।

इस तरह साठोत्तरी सातवें दशक के उपन्यासों में मध्यवर्गीय विघटन का चित्रण पूरी यथार्थता के साथ मिलता है। मध्यवर्ग अपनी झूठी मर्यादा के कारण त्रस्त था। झूठी प्रतिष्ठा की आड़ में यह वर्ग झुलस रहा था। मध्यवर्ग का अहं न तो उन्हें निम्न वर्ग से मिलने देता था न सुविधाओं का अभाव उच्च वर्ग के स्तर को प्राप्त कर सकता था। ''यह वर्ग झूठी मर्यादा का शव कंधे पर लादे घूमता है।''[108] मध्यवर्ग में विभिन्न स्तरों के लोग होते हैं इसलिए ईर्ष्या भाव की प्रमुखता दिखायी देती है। दूसरों के साथ संघर्ष में परास्त हो इस वर्ग के लोग व्यक्तिवादी बन जाते हैं।

आठवें दशक के उपन्यास समय और जीवन की माँग के अनुरूप हिन्दी उपन्यास के विकास की नयी कड़ी है। छठे और सातवें दशक के सामाजिक उपन्यासों में भी स्वातन्त्र्योत्तर स्थितियों, अन्तर्विरोधों, मूल्य–संक्रमण, जीवन की विसंगति को पुरातन के प्रति मोहभंग व अधुनातन के प्रति आकर्षण, नगरीय–महानगरीय जीवन में नये रूप, देह धर्म की स्वीकृति और व्यक्ति स्वातंत्र्य जैसे तत्वों का समावेश हुआ है। किन्तु आठवें दशक के सामाजिक उपन्यासों में समाज, मूल्य और व्यक्ति मूल्य की टकराहट में गहरे तनाव व द्वन्द्व की स्थितियें का अधिक आकलन हुआ है। छठे, सातवें दशक के सामाजिक उपन्यासों में मध्यवर्ग के स्त्री–पुरुष के संबंधों को सूक्ष्म रूप से रुपायित किया गया है। जबकि आठवें दशक के उपन्यासों में मध्यवर्ग अधिक आक्रोशपूर्ण है। क्योंकि युवा–पीढ़ी में विद्रोह देखने को मिलता है। चरमराता हुआ आर्थिक ढाँचा, बढ़ती हुई बेरोजगारी, राजनीतिक दलबन्दी, भ्रष्टाचार ने मध्यवर्ग को त्रस्त कर दिया है। अतः इस दशक का उपन्यास इस सच्चाई को झुठला नहीं सकता। छठे और सातवें दशक के सामाजिक उपन्यास के मध्यवर्ग भावना के अतिरेक एवम् संवेदना से ग्रसित हैं। इसी कारण आठवें दशक के सामाजिक उपन्यास का मध्यवर्ग भावना के अन्तः प्रवाह से बचकर इन दो दशकों से अलग हो जाते हैं। इस दशक के सामाजिक उपन्यास का मध्यवर्गीय समुदाय आधुनिकता, संत्रास,

अकेलापन, निर्वासन जैसी स्थितियों से अलग होकर सामाजिक संघर्ष की गति और दशा की पहचान में सक्रिय हुआ है। मध्यवर्गीय जीवन की यथार्थपरक स्थितियों का चित्रण महत्वपूर्ण रूप से इस दशक के उपन्यासकारों ने किया है। आठवें दशक के सामाजिक उपन्यास पूर्ववर्ती दशकों के सामाजिक लेखन के विकास की अगली कड़ी है।

नौवें दशक के सामाजिक उपन्यासों में नया परिवेश, बदले संबंध और संदर्भ, नई मानसिकता, विसंगतियाँ, अछूते विषय आदि को समेटने की जो कोशिश की गई है, वह श्लाघनीय है। नवम् दशक में भारत विविध अंतर्विरोधों से ग्रसित रहा, जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। वैश्विकरण की संकल्पना सामने थी तो दूसरी तरफ मनुष्य और मानवीयता सिमट रही है। आधुनिक मध्यवर्गीय पीढ़ी पर अंधानुकरण एवं भौतिकता हावी हो गई है। इस वर्ग मे प्रवर्तमान मूल्य, नैतिकता, परम्परा, मानवीय संवेदनाएँ, मान्यताएँ, सांस्कृतिक, संदर्भ, समर्पण, आस्था, सेवाभावना आदि काँच के बर्तन की तरह टूट रहे हैं।

मध्यवर्ग में प्रदर्शनप्रियता, भोगवादी प्रवृत्ति, स्वार्थ, कृत्रिमता, कुटिलता आदि दिन–ब–दिन बढ़ रही थी। इस दशक के उपन्यासों ने इन सभी बातों को समेटने का प्रयास किया है। डॉ. परमानंद श्रीवास्तव उपन्यास के पुनर्जन्म में आठवें–नौवें के प्रति हताश लगते हैं। इसलिए वे उनकी क्षमता पर प्रश्न उठाते हैं। हिन्दी उपन्यासों का अपेक्षित विकास भले ही न हुआ हो, परन्तु ये उपन्यास रूप, कथा, प्रयोग के स्तर पर निश्चय ही उपन्यास के विकास में सहायक थे। नौवें दशक तथा उत्तर आधुनिकता के उपन्यास, हिन्दी उपन्यासों के विकास में अहम् भूमिका निभाते हैं।

अमृतलाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', भगवतीचरण वर्मा का 'प्रश्न और मरीचिका', भीष्म सहानी का 'तमस', रामदरश मिश्र का 'अपने लोग', विवेकी राय का 'श्वेतपत्र', राजेन्द्र अवस्थी का 'बीमार शहर', डॉ. देवराज का 'दूसरा सूत्र', हिमांशु जोशी कृत 'कगार की आग', मालती जोशी कृत 'सहचारिणी', 'गोपनीय', शशिप्रभा शास्त्री का 'नावें', मृदुला गर्ग का 'चित्तकोबरा', निरुपमा सेवती का 'पतझड़ की आवाजें', 'मेरा नरक अपना है'; 'बंटता हुआ आदमी' (तीनों उपन्यासों में इन्होंने मध्यवर्गीय स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। मध्यवर्गीय कामकाजी नारी की अनेक समस्यएँ जो दिंन–प्रतिदिन जटिलतर होतीजा रही हैं, लेखिका ने इन उपन्यासों में बड़ी सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है।) दीप्ति खण्डेलवाल का 'वह तीसरा', 'कोहरे'

आदि उपन्यासों में मध्यवर्ग को प्रतिबिम्बित करने की चेष्टा की है।

मोहन राकेश कृत 'अन्तराल', श्रीलाल शुकल का 'सीमाएँ टूटती हैं', मुद्राराक्षस कृत 'अचलः एक मनोस्थिति', जगदीशचन्द्र कृत 'मुठ्ठीभर कँक्रर', मालती परुलकर कृत 'मुक्ता', विवेकी राय कृत 'सोनामाटी', श्रीलाल शुक्ल कृत 'पहला पड़ाव', पंकज विष्ट कृत 'उस चिड़िया का नाम', नासिरा शर्मा कृत 'ठीकरे की मंगनी' आदि आठवें–नौवें दशक के प्रमुख उपन्यास हैं, जिसमे मध्यवर्ग का निरुपण देखने को मिलता है।

दोहरी आग की लपट – डॉ. देवराज

आज के औद्योगिकरण एवम् आधुनिक युग में नारियाँ इतनी स्वच्छंद एवम् व्यक्तिवादी हो गई हैं कि अपनी प्रगति में दाम्पत्य जीवन को भी बाधकरूप मानती हैं। वह दाम्पत्य जीवन की सीमा में बँधना नहीं चाहती। इस कारण इनके जीवन में विविध समस्याओं को भी स्थान मिला है, जिसमें प्रमुखतः अकेलेपन की भावना, मानसिक अशांति, द्वंद्व, असंतोष की भावना, असुरक्षा का भय आदि ने इनके अंतर्मन में स्थान ले लिया है। आधुनिक नारी अपने व्यक्तित्व में स्वतंत्रता की खोज में प्रयत्नशील रहती है। 'दोहरी आग की लपट' यह डॉ. देवराज कृत उपन्यास है, जिसमें नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की खोज से उत्पन्न समस्याओं पर विचार किया गया है।

इस उपन्यास की स्त्री पात्र इरा एक शिक्षित नारी है। उसके पति देव के साथ वह पूर्ण निष्ठा एवम् विश्वास के साथ जुड़ी रहना चाहती है। इरा एक महत्वाकांक्षी नारी है इस वजह से उसके प्रोत्साहन को बढ़ावा देनेवाले पर–पुरुष मनोज से प्रभावित होती है। देव के साथ उसे आत्मसंतुष्टि नहीं होती, अधूरेपन की भावना से घिरी रहती है। अपने प्रथम पति सुरेन्द्र के प्रति भी उसे आक्रोश है। वह सुबोध के साथ संभोग करती है और उसके जीवन में प्रथम बार उसे आत्मसंतुष्टि मिली। वह सुबोध के साथ बिताई हुए एक रात नहीं भूल सकती। इस प्रकार इरा अपने जीवन में मनोज, देव, सुरेन्द्र, सुबोध नामक चार पुरुषों से संबंध रखती है। आज की आधुनिक शिक्षित नारी सेक्स को नैसर्गिक प्रवृत्ति मानती है। ''वस्तुतः वह आधुनिक जीवन–यापन पद्धति से प्रभावित है, इसीलिए उन्मुक्त और आक्रामक भोग–व्यवहार को पसंद करती है... वह उन्मुक्त भोग पसन्द करती है। चूँकि दाम्पत्य उन्मुक्त भोग के मार्ग में व्यवधान उपस्थित करता

है, इसीलिए दाम्पत्य की परिधि को वह तोड़ना चाहती है। उसके लिए दाम्पत्य कैद है। इरा एक जटिल मनोवृत्ति की नारी है। उसकी जटिलता का कारण जितना मनोवैज्ञानिक नहीं है, उतना सामाजिक ही है। नयी सभ्यता ने ही स्वैराचारी बनाया है।''[109]

इरा और देव के बीच प्रवर्तमान मानसिक सामंजस्य एवम् उनके दाम्पत्य जीवन की समस्त समस्याओं को पूरे विस्तार के साथ दिखाया गया है। पति–पत्नी के बीच तीसरे के प्रभाव को विभिन्न समस्याओं के कारण बताया गया है। देव के आत्मीय व्यवहार के बावजूद भी मनोज के प्रति, सुबोध के प्रति शारीरिक रूप से सांनिध्य चाहती है। इस बात से देव भी वाकिफ है लेकिन स्थिति और अवसर का सम्यक प्रयोग करता है। इस प्रकार यह उपन्यास भी मध्यवर्गीय शिक्षित नारी की मानसिकता एवं आक्रोशपूर्ण व्यवहार को चित्रित करता है। ''आधुनिक नारी मन की पीड़ा और अपने स्वत्व के प्रति सचेष्टता को उसकी समग्र वास्तविकता में पहचानने में यह उपन्यास सफल हुआ है। अतः आधुनिक नारी की सामाजिक, मानसिक और वैचारिक स्थितियों की सम्यक् पहचान में यह उपन्यास अपनी उपस्थिति का एहसास करवाता है।''[110]

सीमाएँ टूटती हैं: श्रीलाल शुक्ल

श्रीलाल शुक्ल का 'राग–दरबारी' उपन्यास सातवें दशक का बहुचर्चित उपन्यास है। ठीक उसी तरह 'सीमाएँ टूटती हैं' आठवें दशक का उच्च मध्यवर्गीय समस्याओं को प्रस्तुत करता बहुचर्चित उपन्यास है। उनके द्वारा दिया गया यह शीर्षक किसी न किसी सीमा का टूटने का बोध कराता है। चाहे वह सीमा व्यक्तिगत मूल्यों, सामाजिक मूल्यों से सम्बन्धित ही क्यों न हों। यह उपन्यास संभोगवादी है, जिसमें शारीरिक सम्बन्ध की वह से व्यक्तिगत संबंध को टूटते हुए दिखाया गया है। ''यह उपन्यास देह के संकट का उपन्यास है।''[111] इस उपन्यास में उच्च मध्यमवर्गीय पात्रों को लिया गया है। उच्च मध्यमवर्गीय समाज में प्रवर्तमान विभिन्न देह सम्बन्धी समस्या को रूपायित किया गया है। ''इसमें उच्च मध्यवर्ग के जीवन की आंतरिक सड़ांध और उससे प्रभावित माहोल का चित्रण किया गया है। लेकिन उच्च वर्गीय समस्या केवल पात्रों के दोहभोग की समस्या बनकर रह जाती है।''[112]

चाँद अपने ही पिता के मित्र विमल के साथ शारीरिक सम्बन्ध रखती है, जो व्यक्ति पिता की उम्र का और पिता के समान हो, उसी के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना सामाजिक रूप से अमान्य है। इसी कारण परिवार के लोग इस सम्बन्ध का विरोध करते हैं। लेकिन इस विरोध से वह अपना सम्बन्ध विच्छेद करने की वजह उसे ज्यादा गहरा बनाते हैं। ''उच्च मध्यमवर्गीय संस्कार में खुलापन बहुत ही कम होता है, इसलिए पारिवारिक स्थितियाँ इस सम्बन्ध का विरोध करने लगती हैं।''[113] विमल चाँद को सम्पूर्ण रूप से भोगने के के बाद उसके साथ विश्वासघात करता है, उसे छोड़ देता है। चाँद और विमल का सम्बन्ध आत्म केन्द्रित न होकर शारीरिक सम्बन्ध को ज्यादा महत्व देता है, इस वजह से यह सम्बन्ध टूटता हुआ दिखाया गया है। चाँद और धार्मिक वृत्तिवाले तारानाथ के सम्बन्ध को भी दिखाया जाता है। यह भी शारीरिक भोग पर ही स्थापित है। यहाँ पर सभी पात्रों को देह–भोग की पीड़ा से व्यथित बताया गया है। ज्यादातर मध्यमवर्ग आर्थिक समस्या से पीड़ित होकर इस रास्ते को अपनाता है। लेकिन उच्च मध्यमवर्ग जटिल मानसिकता, भोग–विलास के कारण इस रास्ते को अपनाते हैं। चाँद और विमल अपनी सेक्स लिप्सा में इतने मग्न हैं कि इस कारण उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध में दरार उत्पन्न होती है वह भी नहीं दिखायी देती। ''यह इनकी शारीरिक भोग–लिप्सा और उसके प्रभाव से बनते बिगड़ते सम्बन्धों की पहचान करता है।''[114]

दूसरी बार (ई. 1986)– श्रीकांत वर्मा

श्रीकांत वर्मा कृत 'दूसरी बार' सामाजिक उपन्यास है। सामाजिक जड़ता, मानवीय सम्बन्धों और स्थितियों को अपरिवर्तनीय अवस्थाओं में लाकर इस उपन्यास में खड़ा कर दिया जाता है। इस उपन्यास में नायक और नायिका बिन्दो के बिखरे हुए लग्न–जीवन की कथा है। दोनों के पुनःमिलन के समय मानसिक द्वंद्व, यंत्रणाएँ , समस्याएँ, प्रतिद्वंद्व, उद्वेलित स्थिति का वर्णन है।

उपन्यास के प्रारंभ में नायिका बिन्दो का अपने पति के घर दूसरी बार आगमन से होता है। पहले नायक और नायिका साथ विश्वासपूर्वक जिन्दगी व्यतीत करते थे। अचानक दिशाहीन नायिका नायक का विश्वास तोड़कर बिना बताये घर से चली जाती है। इस कारण उसकी दूबारा उपस्थिति

से नायक विक्षुब्ध एवम् विचलित है। एक बार टूटते हुए विश्वास को दूसरी बार संपादित करने में कठिनाई का अनुभव बिन्दो करती है।

उपन्यास पूरा छः अध्यायों में बाँटा जा सकता है। पहले अध्याय में दिखाया गया है कि नायिका का पत्र नायक को मिलता है जिससे वह आश्चर्यचकित होता है और साथ-साथ उसके मन में खीझ की स्थिति भी उत्पन्न होती है। बिन्धो का पत्र पढ़कर नायक को लगता है कि वह समझौता करना चाहती है, लेकिन पूरा दिन साथ बिताने पर भी उसका खयाल गलत साबित होता है, जिसे वह प्रतिहिंसा के भाव से आक्रांत होने लगता है। बिन्दों अपनी मुलाकात में कहती है – ''मुझे कुछ बातें करनी थीं।''[115] लेकिन खुलकर बात नहीं कर पाती, अंत में झुंझलाकर केवल इतना कहती है– ''मेरे कारण आपको आज सारा दिन कष्ट हुआ।''[2] आज के आधुनिक मध्यमवर्गीय शिक्षित पति-पत्नी में अहम् के कारण दोनों के बीच एक अदृश्य खाई बनी रहती है। दोनों अपने स्वाभिमान को चोट नहीं पहुँचाना चाहते, इस उपन्यास में इस बात पर नायक और नायिका के माध्यम से इंगित किया गया है। ''बिन्दो के चरित्र की आंतरिक मनःस्थिति कथा को विकसित करती है। एक-दूसरे की गांठ खोलने के लिए लालायित रहना, लेकिन अपने अहम् के कारण चुप और लगभग अजनबी रहना, तिलमिलाना, अपरिचित की तरह दिन भर भटकना आदि आंतरिक मनःस्थिति के द्वंद्व को रूपायित करते हैं।''[117]

दूसरे अध्याय के अंतर्गत नायक की बेचन अवस्था का वर्णन किया गया है। वह मानसिक शांति के लिए इधर-उधर भटकता रहता है। आखिर में वह बिन्दों के घर पर भी पहुँच जाता है। लेकिन वहाँ से वापस आ जाता है। घर पर आने पर नौकर का बताना कि किसी बाई का फोन आया था तो वह खुश हो जाता है। उसे लगता है शायद बिन्दो ने ही फोन किया होगा। लेकिन बड़े इन्तजार के बाद फोन न आने पर और पता लगने पर कि बिन्दो ने फोन नहीं किया था, वह पुनः तिलमिला उठता है। तीसरे अध्याय में नायक और उसके मित्र अनिल की कथा वर्णन है, जिसमें गुत्थी सुलझाने में उसकी मदद मांगता है। ''अनिल से मिलकर जो कुछ कहना चाहता था, वह पूरी तरह नहीं कह पाता, उल्टे अनिल व्यथा के मूल कारणों का उल्लेख कर उसकी व्यथा को और बढ़ाता है।''[118] व्यर्थ विचारों के बाद जब वह घर वापस लौटता है तब बिन्दो को अपने सम्मुख अपने घर में पाता है। बिन्दो वापस समझौता करने आयी थी। लेकिन

एक–दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश में उन दोनों के बीच फिर से संघर्ष हो जाता है। मध्यमवर्गीय शिक्षित नारी आज के समय में किसी भी कीमत में अपने पति के सामने झुकना नहीं पसंद करती। अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की खोज में अपने पति को बाधकरूप पाकर, उसे छोड़ने में ही समझदारी मानती है। यहाँ पर बिन्दो भी घुटन एवम् नायक के कुछ व्यवहार से क्षुब्ध होकर अपनी चिट्ठियाँ माँगती है।''चिट्ठियाँ वापस लेने आयी थी।''[119] वहाँ से वापस चली जाती है। अत में दिखाया गया है कि थके, निराश, पराजित नायक और बिन्दो के बीच समझौता होता है। ''उसने मुझे जकड़ लिया, ठीक अमरबेल की तरह''[120] इस प्रकार इस उपन्यास में आज के जीवन में जी रहे मध्यमवर्गीय स्त्री–पुरुष के बनते–बिगड़ते रिश्तों को सतही रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्त्री और पुरुष के बीच आपसी मूल्यों में द्वन्द्व को दिखाया गया है। ''जिन्दगी का बिखराव, विश्वासों का टूटना, अजनबी और अकेलापन, मन की कुंठाएँ, सम्बन्धों को लेकर निराशा, अवसाद और मृत्यु की यंत्रणा, शंका, घुटन, खोखली औपचारिकता, विक्षोभ, आकुलता आदि कई प्रकार की आधुनिक मनःस्थितियों को पूरे उपन्यास में रूपायित किया गया है।''[121]

'दूसरी बार' उपन्यास ने जीवन मूल्यों को सम्प्रेषित कर आधुनिक जीवन की अनुभूतियों को जीवन्त कर उसे नये साँचे में ढाला है।

ऐलान गली जिंदा है (ई. 1984) – चंद्रकांता

चंद्रकांता द्वारा रचित 'ऐलान गली जिंदा है' नौवें दशक का आंचलिक उपन्यास है। इसमें कश्मीर के श्रीनगर की गली को केन्द्र में रखा गया है। वस्तुतः यह लेखिका की जन्मभूमि होने से इससे भावात्मक लगाव भी देखने को मिलता है। इसलिए लेखिका कहती हैं ''मैं आपको कहानी नहीं सुना रही, जिन्दगी दिखा रही हूँ।''[122]

उपन्यास को दो खण्डों में विभाजित किया गया है। जिसमें पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं को उद्‌घाटित करता है उपन्यास का प्रथम खंड। दूसरे खंड में यही गली के चरित्र परिवर्तन के कारण पारंपरिक मूल्यों से कटते नजर आते हैं। संसारचंद, दयाराम मास्टर, अनवर मियाँ, श्रीरामदयाल, विधवा रत्ना, रूपा–कुंदन और तारा–तेजा का असफल प्रेम आदि का विवरण मिलता है। ''विशेषतः पारस्परिक सम्बन्ध, अभाव, परंपरा, विश्वास, पारिवारिक

जीवन, आस्तिकता, पर्व, त्यौहार, सांप्रदायिक सौहार्द, धार्मिक परिवेश आदि संदर्भ प्रमुखता से उभर आए हैं। यह खंड मध्यमवर्गीय जीवन के विविध आयामों को खोलता है। एक सम्पूर्ण समाज सामने उभर आता है।''[123]

दूसरे खंड के अंतर्गत समय के साथ होते हुए परिवर्तन देखने को मिलते हैं। मध्यमवर्गीय शिक्षित व्यक्ति ने मध्यमवर्गीय समाज की व्याख्या को ही बदल दिया है। अब इस समाज में संयुक्त परिवार का विघटन, नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच मूल्य संघर्ष, अनमेल विवाह, प्रेम विवाह, पारिवारिक संबंधों में तनाव, मानसिक द्वन्द्व, अकेलापन, व्यक्तिगत स्वातंत्र्यता आदि बातें इस उपन्यास के दूसरे खंड में भी विद्यमान हैं।

कंठ काका, मास्टर दीनदयाल, संसारचंद्र पुरोहित, अनवर मियाँ आदि पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। जबकि अवतारे, लोके, कुंदन, तेजा, सलामे आदि नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। मास्टर दयाराम एक अनुशासनप्रिय अध्यापक है, अपने बेटे कुंदन का फेल होना वह सह नहीं पाते और अपने बेटे के साथ कड़ा रुख अपनाते हैं, अंत में हताश कुन्दन आत्महत्या कर लेता है। अवतारे शिक्षित युवा पीढ़ी का नेतृत्व करता है और अपनी बेकारी दूर करने के लिए बॉम्बे चला जाता है। ''अवतारे के माध्यम से युवा पीढ़ी की विवशता, भटकन, पीढ़ी संघर्ष, अंचल प्रेम आदि पर प्रकाश डाला है।''[124] नारी पात्रों के अंतर्गत संसारचंद्र पुरोहित की पत्नी अरुंधती का वर्णन है, जो धर्मभीरु और रुढ़ियों का कठोर पालन कलनेवाली है। ''वह घर के लिए बनी थी, घर में जन्मी, घर में खटती और अंततः घरवालों की सेवा करती, घर में ही मरने को जीवन की महान उपलब्धि समझती थी।''[125] विधवा रत्ना निर्भिक एवं विद्रोही है। उसकी बेटी रूपा कुन्दन के मरने के बाद विरागनी बन जाती है, ठीक उसी तरह मास्टर की बेटी तारा प्रेम में असफल होने पर पागल हो जाती है।

ऐलान गली में अगर कोई भी परिवार समस्या, मुश्किल, आपत्ति में हो तो सब उसकी सहायता के लिए इस प्रकार दौड़ जाते हैं, मानो वह उनकी हो। ''गली में किसी के ऋण कभी नहीं चुकते। कोई अपने लिए नहीं जीता। अगर कोई ऐसा हो तो उसे माफ नहीं किया जाता। ताउम्र दूसरों का ऋण उतारने के लिए जिया जाता है, फिर भी ऋण नहीं चुकता। पीढ़ी दर पीढ़ी उनका बोझ ढोया जाता है और आश्चर्य तो यह कि आज के बदलते युग में भी इसे धर्म कर्तव्य और नियति कहकर शिरोधार्य किया जाता है।''[126]

मध्यमवर्गीय परिवार में संयुक्त परिवार के विघटन की समस्या संसारचंद्र और अरुंधती के माध्यम से प्रस्तुत की गई है। बुढ़ापे में वह संसार की जवाबदारी बेटों को सौंपना चाहते हैं, लेकिन उनकी बहुएँ संयुक्त परिवार में रहना नहीं चाहतीं। ''एक घर में तीन घर हो गए हैं। जवा अपनी पत्नी को लेकर अलग बस रहा है, मखना अपनी पत्नी और दो बच्चों को लेकर। अरुंधती का चौका-चूल्हा भी अलग हो गया है।''[127]

इस उपन्यास में मानवीय कमियाँ, विघटन, टूटन आदि को लेखिका ने बखूबी प्रस्तुत किया है। ''टाइफस की बीमारी में रत्नी के प्रति लोगों का व्यवहार, अवतारे को गोद लेने पर अर्जुनाथ का मुकर जाना, अर्जुननाथ तथा द्वारिका का बुढ़ापे में शादी रचाना, संयुक्त परिवारों में टूटन, बूढ़ों की समस्या,धार्मिक आडंबर, धर्म के ठेकेदारों के परिणामस्वरूप सांप्रदायिकता की लहर, पीढ़ी संघर्ष आदि को भी तटस्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं। परंपरा से गली में संयुक्त परिवार चले आ रहे हैं। लेकिन अब वे काँच के बर्तन की तरह टूट रहे हैं। शिक्षित बहुएँ विवाह उपरांत तुरंत अपनी रसोई अलग पकाना चाहती हैं। दादी, सास-ससुर, जेठ-जेठानी की धाक उन्हें सुहाती नहीं।''[128] इस उपन्यास में यह दिखाने की कोशिश की गई है कि नई पीढ़ी को अपने बदलते मूल्यों के सामने पुराने मूल्य घिसे-पिटे, बेकार लगते हैं. इस प्रकार ''लेखिका ने मध्यमवर्गीय समाज के मूल्य, आपसी संबंध, समस्याएँ और संस्कृति को यथातथ्य अंकित किया है।''[129]

उपर्युक्त उपन्यासों के अलावा भी निम्नलिखित उपन्यासों में मध्यमवर्गीय समाज का चित्रण किया गया है। 'अन्तराल' में निर्वासन की समस्या को स्त्री-पुरुष के अलग-अलग कोणों से देखा गया है। निर्वासन की समस्या महानगरों के मध्यवर्ग से जुड़ी हुई है, जिससे निर्वैयक्तिक तथा तकनीकी समाज के भीतर भावनारहित सम्बन्धों का सिंचन होता है। इस उपन्यास में श्यामा का निर्वासन उसकी मानसिक जटिलता से ही उत्पन्न है। वह समस्याओं को नहीं घेर लेती है, समस्याओं के क्षेत्रफल में वह टूटती चली जाती है। अतः उसके निर्वासन का कारण कुंठाग्रस्त अन्तर्मन है। कुमार का निर्वासन आत्मा से जुड़ा हुआ है। श्यामा और कुमार के निर्वासन में यही भेद है। 'अचल :एक मनःस्थिति' मुद्राराक्षस जो प्रतिबद्ध लेखक है, उसका उपन्यास है। इसमें लेखक ने अचला के माध्यम से नारी की स्थिति का, समस्या का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर किया है। इसमें मध्यवर्गीय नारी के आथ्मरक्षण के प्रयास के साथ-साथ उससे उत्पन्न आक्रोश का भी वर्णन है।

जगदीशचन्द्र रचित 'मुट्ठी भर काँकर' ग्रामीण मध्यमवर्ग से सम्बन्धित उपन्यास है। इस उपन्यास के अंतर्गत दिखाये गए मुखिया, ताऊ, सूबेदार मांडूसिंह, पंडित बंशीलाल, दुकानदार दुनीचन्द्र आदि मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए पात्र हैं। 'ये सभी मध्यवर्गीय लोग हैं। मध्यवर्ग अपनी अस्मिता की रक्षा में श्रमिक से सचेष्ट एवं क्रियाशील होता है। लेकिन शहरी मध्यवर्ग की अपेक्षा ग्रामीण मध्यवर्ग अधिक सीधा होता है। उनकी चिन्ता है कि जमीन की समाप्ति के बाद श्रमिकों और उनके बीच का अन्तर समाप्त हो जायेगा। वे भी श्रमिक बन जा सकते हैं। कल्पना से ही वे भयाक्रांत हैं। उत्तम प्रकाश इन ग्रामीणों का सम्बन्धी है। वे लोग उसके पास जाकर अपनी जमीन बचाने का प्रयास करते हैं। उत्तम प्रकाश उनकी समस्या को व्यापारिक बुद्धि से देखता है। कभी उनका भव्य स्वागत कर और कभी सरकारी कार्रवाई की धमकी देकर उनकी जमीन भी उत्तम प्रकाश ले लेता है, जिसको सरकार ने छोड़ा था। अतः शालीन व्यवहार का नाटक कर वह मध्यवर्ग और निम्न वर्ग का शोषण करता है। इस प्रकार इस उपन्यास में पूँजीवादी वर्ग के द्वारा मध्यवर्गीय कृषक किस प्रकार अपने भोले पन के कारण छला जाता है, यह दिखाया गया है।

आठवाँ दशक सामाजिक जीवन की वास्तविकता का लेखन है। 'मुक्ता' मालती परुलकर द्वारा रचित उपन्यास है जो इसी समय अवधि में लिखा गया था। लेखिका ने कथा में दिखाई हुई नायिका रूककी एक मध्यमवर्गीयपरिवार में जन्म लेती है। मध्यवर्गीय समाज परंपरा से जकड़ा हुआ होने के कारण उसकी आर्थिक स्थिति दयनीय हो जाती है। माता–पिता के देहांत के बाद वह संगीत–शिक्षा ग्रहण करती है। जीतु से वह प्यार करती है, लेकिन जीतू के विदेशगमन के कारण उसका महि के साथ ब्याह हो जाता है, जो भोगविलासी व्यक्ति है। जीतू के वापस आने पर उससे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है। इस प्रकार इस कथा में जीतू और रुक्की के शारीरिक सम्बन्धों और इससे उत्पन्न मानसिक प्रतिक्रिया का विश्लेषण है।

विवेकी राय नौवें दशक के जाने–माने ग्रामांचल–कथाकार हैं। इनके द्वारा रचित आंचलिक उपन्यास 'सोना माटी' आज़ादी के बाद के बदले हुए गाँव की कहानी है। आधुनिक युग की सारी विकृतियाँ गाँव को पूरी तरह तोड़ रही हैं। सामाजिक मूल्यों के ह्रास के साथ गाँव में स्वार्थपरता, भौतिक आग्रह, आधुनिकता तथा व्यावसायिक राजनीति ने गाँव की पुरानी संरचना को तोड़ा है।

इस उपन्यास में मध्यवर्गीय किसानों की घटिया राजनीति, इनके समाज में प्रवर्तमान दहेज समस्या, अनमेल विवाह, बेटी बेचने की विवशता आदि विभिन्न आयामों का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में एक मध्यवर्गीय पात्र रामरूप का है, जो एक शिक्षक है। उसमें परिवर्तन की चाह है, यह मध्यवर्गीय नैतिक आचरण से प्रभावित है। इसलिए वह चाहकर भी प्रगतिशील कार्यक्रम में सक्रिय सहयोग नहीं दे पाता। इसी प्रकार श्रीलाल शुक्ल का 'पहला पड़ाव' एवम् पंकज विष्ट का उपन्यास 'उस चिड़िया का नाम' में आधुनिक मध्यमवर्ग में प्रवर्तमान नये-पुराने द्वन्द्व, संघर्ष एवम् इसके कारण प्रवर्तमान विविध समस्याओं का आकलन हुआ है।

नासिरा शर्मा हिन्दी की लोकप्रिय तथा विशिष्ट कथाकार हैं। 'ठीकरे की मंगनी' उच्च मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की कहानी है। इसमें धार्मिक जड़ता को तोड़कर नए ढंग से जिन्दगी जीने की पहल की गई है। उपन्यास की नायिका महरुख प्रतिभा-सम्पन्न, उच्च शिक्षा प्राप्त लड़की है। वह एक धर्मान्ध मुस्लिम परिवार की लड़की है। वह धार्मिक जड़ता और शून्यता से निकलकर एक नई जीवनचर्या का निर्माण करना चाहती है। वह पारिवारिक जीवन-शैली और आधुनिक जीवन के परिवेश से निरन्तर जूझती टकराती है। ''शहरी जीवन की जटिल मानसिकता से घबराकर वह ग्रामीण जीवन की सात्विकता में आकर अपने चरित्र को नए ढंग से गढ़ती भी है।''[130]

साठोत्तरी मध्यवर्ग इतना व्यापक और विविध विशेषता से सम्पन्न है। आर्थिक दुर्व्यवस्था से आक्रांत मध्यवर्ग की समस्याएँ अनवरत विस्तार पा रही हैं। दूसरी तरफ समाज-सुधार के आदर्श, शोषण के खिलाफ चिंतन, चेतना और विद्रोह जगाने की चिंगारी भी इसी वर्ग से निकलती है। पुराने और नई पीढ़ियों के बीच पाया जाता द्वन्द्व का वर्णन भी हुआ है। उपर्युक्त अधिकतर उपन्यासकार मध्यवर्गीय संस्कारों के भोक्ता व द्रष्टा हैं। उनके जीवानुभवों में वर्गीय निजता और ईमानदारी है। यही वजह उनके उपन्यास सृजन में मध्यवर्ग को विशेष स्थान और महत्व दिलातीहै।

साठोत्तरी गुजराती उपन्यासों के अंतर्गत मध्यमवर्गः

साठोत्तरी गुजराती नवलकथा (उपन्यास) रघुवीर चौधरी कृत 'अमृता' (1965), राजीव पटेल कृत 'झंझा' (1969), सरोज पाठक कृत 'नाईटमेर' (1969), मधुराय कृत 'कामिनी'

(1970), धीरूबेन पटेल कृत 'शीमळानां फूल' (1976), वीनेश अंताणी कृत 'प्रियजन', भगवतीकुमार शर्मा कृत 'ऊर्ध्वमूल', डॉ. बाबु दावलपुरा कृत 'प्रियजन', मोहम्मद मांकड़ कृत 'वंचिता', 'मनोरमा', हसित बूच कृत 'चल–अंचल', चिनु मोदी कृत 'भाव–अभाव', धीरूबहेन पटेल कृत 'वडवानल', 'आंधळी गली', हरीन्द्र दवे कृत 'अनागत', मधुराय कृत 'चहेरो', कुंदनिका कापड़िया कृत 'सात पगलां आकाशमां', मफत ओझा कृत 'घुघवता सागरनुं मौन', 'भतर', डॉ. बहेचरभाई पटेल कृत 'नहि द्वार, नहि दीवाल', दिलीप राणपुरा कृत 'मीरांनी रही महेंक' और 'पीठे पांगर्यो पीपळो', भानुप्रसाद कृत 'एक हतुं अमदावाद', जोसेफ मेकवान कृत 'आंगळियात', योगेश जोषी कृत 'समुद्री', रमेश र. दवे कृत 'समजपूर्वक', 'सथवारो', तरुलता महेता कृत 'लीस', वर्षा अडालजा कृत 'खरी पडेलो टहुको', अशोकपुरी गोस्वामी कृत 'कूवो' के अंतर्गत मध्यमवर्गीय समाज के अंतर्गत प्रवर्तमान विभिन्न समस्याओं का निरूपण हुआ है। डॅ. जयंत गाडीत के अनुसार ''धारावाही उपन्यास के परिणामस्वरूप गुजराती उपन्यास का विषयवस्तु सीमित हो चुका है। अधिकतर कृतियाँ प्रणय, लग्न जीवन और विशेषतः मध्यमवर्गीय व्यक्तियों के जीवन से सम्बन्धित समस्याओं के आसपास घूमती है।''[131]

साठ के दशक के प्रमुख गुजराती सामाजिक उपन्यासों में मध्यमवर्गः

उपन्यास के अंतर्गत आकार, विस्तार, रीति आदि की विविधता के कारण उसे समझने के लिए वर्गीकरण का प्रयास होता रहता है। गुजराती विवेचकों ने उपन्यास के वर्गीकरण के लिए विषय–वस्तु, घटक तत्वों, निरूपण–शैली आदि को ध्यान में रखा। इस आधार पर उन्होंने नवलकथा का पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रादेशिक, मनोवैज्ञानिक आदि वर्गीकरण किया।

सामाजिक उपन्यास में समाज से जुड़ी हुई विभिन्न घटनाओं, रुढ़ियों, मान्यताओं, रीति–रिवाज, व्यावहारिक नीति, लाँच–रिश्वत आदि का उल्लेख मिलता है। इसमें वास्तविकता का प्राधान्य होता है। गुजराती साहित्य में उपन्यास के अंतर्गत आधुनिकता का प्रारंभ सुरेश जोशी कृत 'गृह–प्रवेश' से माना जाता है। ''1957 में सुरेश जोशी का वार्तासंग्रह 'गृहप्रवेश' प्रकाशित होता है वही संग्रह नवीन–शैली के उपन्यास का प्रस्थान बिंदु है।''[132]

इस समय के उपन्यासों के अंतर्गत बाह्य स्थूल घटनाओं का महत्व कम हो जाता है और लेखक का ध्यान ज्यादातर सूक्ष्म वास्ताविक घटनाओं पर रहता है। भव्य और दिव्य घटनाओं के स्थान पर व्यक्ति के जीवन की व्यर्थता, विषमता और शून्यता को व्यक्त करती हुई क्षुद्र घटनाओं को ध्यान में लिया है। 1960 के बाद के आधुनिक गुजराती उपन्यासों में ज्यादातर निम्न मध्यमवर्गीय, मध्य–मध्यमवर्ग, उच्च मध्यमवर्ग को फलित किया गया है। इस समय के मध्यमवर्गीय व्यक्ति प्रचलित और परंपरागत नैतिक खयालों को छोड़कर समाज में प्रवर्तमान मूल्यों की अवगणना कर वैयक्तिक संवेदना को महत्व देने लगे। कारण इस समय के गुजराती सामाजिक मध्यमवर्गीय उपन्यासों के अंतर्गत व्यक्तिगत मनोविश्लेषण एवम् आदिम कामनाओं तथा अश्लीलता का आलेखन हुआ है।

सन् 60 के दशक के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय लोगों की रूचि–अरूचि, उनकी समस्याओं और सांसारिक जवाबदारियों, वह जिस समाज में जीते हैं उस समाज की वेदना और प्रश्नों को निरुपित किया है। मध्यमवर्गीय व्यक्ति में प्रवर्तमान विषमता, एकलता, असंतोष, शून्यता, व्यर्थता, विद्रोही वृत्ति को दिखाया गया है। आधुनिक पीढ़ी का विद्रोह जब निष्फल होता है तब विवश होकर पलायनवादी वृत्ति को अपनाता है या फिर आत्महत्या के लिए प्रेरित होता है। मध्यमवर्गीय व्यक्ति आवेश में आकर प्रेरित हुए क्षणों के लिए या फिर जीवन व्यतीत कर देता है। इस समय के उपन्यासों में स्त्री–पुरुष के प्रेम से ज्यादा उनके काम–जीवन को उत्कृष्ट रूप में चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इसमें नगर–जीवन की कठोर वास्तविकता और मध्यमवर्गीय व्यक्ति के स्वप्नों, अपेक्षाओं और संघर्षो को चित्रित किया है।

''शायद आज का लेखकर स्थिरता के एकांत भाव से कुछ जान सके उतना स्वस्थ नहीं रह सकता। शायद आज जीने के लिए अलग–अलग व्यक्तित्व धारण करने से ही टिक सकते हैं।''[133]

रघुवीर चौधरी कृत 'आवरण', सुरेश जोशी कृत 'गृह प्रवेश', श्री बक्षी कृत 'बार वर्ष आ मुंबई शहेरमां', 'रजजोनो पति', शिवकुमार जोशी कृत 'कंचुकी बंध', 'अनंगराग', 'श्रावणी', 'आभ रुये एनी नवलख धारे', सुरेश जोषी कृत 'छिन्न पत्र', भगवतीकुमार शर्मा कृत 'उर्ध्वमूल', योगेश जोषी कृत 'समुडी', सुनील गंगोपाध्याय कृत 'स्वर्ग नीचे मनुष्य', रघुवीर चौधरी कृत

'अमृता', रावजी पटेल कृत 'झंझा', सरोज पाठक कृत 'नाईटमेर', मधुराय कृत 'कामिनी', धीरुबहेन पटेल कृत 'वांसनो अंकुर', 'आंधळी गली', कुन्दनिका कापड़िया कृत 'परोढ़ थतां पहेला', मधुराय कृत 'चेहरो', इश्वर पेटलीकर कृत 'ऋणानुबंध', मोहम्मद मांकड कृत 'मनोरमा' आदि सामाजिक नवलकथाओं के अंतर्गत मध्यमवर्ग की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक विशिष्टताओं एवम् समस्याओं का वर्णन हुआ है।

धुम्मस – विनोद जोशी (1965)

विनोद जोशी कृत 'धुम्मस' उपन्यास का नायक गौतम मध्यमवर्गीय युवक पात्र है। इस उपन्यास के अन्य पात्रों के अंगर्तत गौतम की पत्नी उर्मिला, उसके दोस्त जीतु, मधु और उनकी पत्नीयाँ निशा और चारु का समावेश होता है। इसी के आसपास सम्पूर्ण उपन्यास का तानाबाना बुना हुआ है। सभी पात्र उपन्यास में बारी–बारी गौतम के साथ किसी न किसी वजह से जुड़ते रहते हैं।

'धुम्मस' उपन्यास की कथा–वस्तु के अंतर्गत मध्यमवर्गीय पुरुष की शारीरिक लिप्सा, निराशा, कुण्ठा आदि दिखाया गया है। गौतम अपनी पत्नी उर्मिला से लग्न करने के कुछ समय पश्चात् उसके ठंडे शारीरिक प्रतिसाद न सह पाने के कारण आवेशशील होकर निशा के साथ संबंध स्थापित करना चाहता है। लेकिन निशा उसके मनोरथ पूर्ण न करके जीतु के साथ शादी कर लेती है। उसके बाद गौतम उसके मित्र मधु की पत्नी चारु को अपने वश में कर लेता है। चारु आधुनिक मध्यमवर्गीय की तरह स्वच्छन्द वृत्ति वाली विवाहित स्त्री है। चारु को अपना पति माँ के इशारों पर नाचनेवाला लगता है। वह भी पौरुषसभर आक्रामक पुरुष की झंखना रखती है। इस कारणवश वह गौतम के साथ शारीरिक सम्बन्ध रखती है। अपनी वृत्तियों के संतोष में सुख का अनुभव करनेवाली स्त्री है। गौतम के साथ मौज करने के लिए वह मधु को 'बिजनेस टूर' के बहाने दूसरे शहर भेजने के भी षडयंत्र करती है। मधु और उर्मिला दोनों इस बात से वंचित हैं। इस उपन्यास में मध्यवर्ग में प्रवर्तमान स्वच्छन्द प्रेम, काम–भावना और यौन–सम्बन्धों का चित्रण उन्मुक्त रूप में दिखाया गया है। ''गौतम और चारु के लिए लग्न संस्था एक दंभ है। एक जगह उपन्यास में दिखाया गया है कि गौतम बताता है: ''स्त्री एक उपयोगी वस्तु है। कुदरत

की सर्जनलीला में उसके अलावा उसका कुछ महत्व नहीं है।''[134] गौतम दैनिक का मंत्री होने की वजह से अनेक भ्रष्टाचार में फँस जाता है।चारु के साथ शारीरिक सुख भोगने के लिए वह पैसे खर्च करता रहता है, अंत में उसी कारण वह कर्ज में डूब जाता है। कर्ज की चिंता के कारण एक दिन उर्मिला से बड़ा झगड़ा कर बैठता है। उर्मिला घर छोड़कर मायके चली जाती है। गौतम जगत की अर्थहीनता से खीझकर अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है।

गौतम के अलावा इस उपन्यास के सभी पात्र गौण रूप से सामने आते हैं। जीतु जो गौतम का दोस्त है, वह दो संतानों के मृत्यु और पत्नी निशा के गृहत्याग के पश्चात् भी निराशवादी नहीं बन जाता। वह इस बात को निर्मल भाव से एवम् सम्यक दृष्टि से सह लेता है। जीवन के अंत में प्राणघातक बीमारी से पीड़ित होकर मर जाता है। गौतम आखिर में अपना मानसिक संतुलन खोकर ज़हर पीकर आत्महत्या करता है। पेरेलिसिस जैसी बीमारी का भोग बना हुआ उसका मित्र जीतु भी आखिर में मर जाता है। ''उपन्यास के जतन में द्विधा, आक्रमकता, अनिर्णायकता और जातीयता जैसे संदर्भो से जन्मे हुए मन के अंतर्द्वन्द्वों में यह उपन्यास के घटनासूत्र विस्तृत हुए हैं।''[135]

नायक अस्तित्ववादी वृत्ति से ग्रसित होने के कारण वह अपने निर्णयों में स्वकेन्द्रिय बन जाता है। आत्महत्या का जो मार्ग गौतम ने अपनाया है वह असहायता और दैन्य का परिणाम है।

झंझा : रावजी पटेल (1967)

'' 'झंझा' पृथ्वी की आंतरिक झंझा की कथा है। पृथ्वी की यह आत्मकथा संवेदनात्मक उपन्यास है। यह लिखी हुई है, डायरी शैली में।''[136]

प्रस्तुत उपन्यास में पृथ्वी जो उच्च मध्यमवर्गीय नायक है। इस उपन्यास में नायक की परिस्थिति ठीक उस मध्यमवर्ग की तरह है जो मानव संबंधों से संत्रस्त होकर मानव संबंध के बिना व्याकुल हो जाता है।

पृथ्वी संवेदनशील युवक है। उपन्यास लिखने की तीव्रतम इच्छा रखता है। पृथ्वी ऐसे तो सुखी परिवार से सम्बन्ध रखता है। माता-पिता, भाई-बहन, पत्नी और नौकर यह सभी के

रहते हुए केवल मंगो ही ऐसी व्यक्ति है जो पृथ्वी की आंतरिक मनोभावों को अच्छी तरह समझ पाता है। परिवार के सभी लोग भौतिकवादी हैं। सभी लोग समय की चौकड़ी में बंधे हुए हैं। यह सब पृथ्वी की प्रकृति के प्रतिकूल है। आज्ञा उच्च मध्यमवर्गीय नारी की तरह स्वच्छन्द, अभिमानी, उन्नतमूल नारी है। आज्ञा उसे छोड़कर चली जाती है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में मध्यमवर्गीय स्त्री–पुरुष के बनते–बिगड़ते रिश्तों को दिखाया गया है। इस उपन्यास में उच्च मध्यवर्गीय युवकपृथ्वी की जिन्दगी का बिखराव, अजनबीपन, अकेलापन, सम्बन्धों में निराशा और मानसिक द्वन्द्व का निरूपण हुआ है।

पृथ्वी को उपन्यास लिखना होता है, इस वजह से वह अपना आलीशान मकान छोडकर छोटी–सी खोली किराये पर रख लेता है। वहाँ पर वह अकेला रहता है। वहाँ पर भी वह उपन्यास नहीं लिख पाता। वह डायरी लिखना शुरु करता है। जिस खोली को किराये पर रखी है उसके सामने मि. पुरोहित और गुणवंती भी रहते हैं। उसके अलावा मकान मालिक मि. भट्ट और उसकी पुत्री क्षमता, उसकी बड़ी बहन शीला और उसका भाई ऋजुल यह सभी भी रहते हैं। यह सभी मानवीय संबंध पृथ्वी को रुचिकर नहीं लगते। इस वजह से वह अपने घर में चिड़िया और तोते को पालता है। अब पृथ्वी की जिन्दगी में चिड़िया, तोता और क्षमा अविभाज्य अंग बन जाते हैं। क्षमा के साथ उसका प्रेम भी हो जाता है। लेकिन उसकी प्रियतम् क्षमा की उसके पिता ने किसी आनंद नामक बैंक के कारकून के साथ शादी करवा दी। इस बात से पृथ्वी को बहुत ही दुःख हुआ। वह अपनी डायरी में लिखता हैः ''मधुर क्षणों का धंधुआत क्षणिक आकर चला गया और मेरे अपनत्व को मूल जड़ से उखाड़कर विरान रण विस्तार में रख गया।''[137]

पृथ्वी इस घटना से व्यथित होकर अहमदाबाद चला जाता है और उसको वहाँ पर मुस्तफा लूट लेता है। वहाँ पर उसे एक कपूरी मिल जाती है। पृथ्वी के लिए अपना सब अंगत बेचकर ट्रेन की टिकट के रुपये देती है। दिल्ली से अहमदाबाद आता है, उस समय क्षमा विधवा हो जाती है। पृथ्वी के जीवन में यह जो झंझावात (बवंडर) आता है, इसकी कथा प्रस्तुत उपन्यास में है।

आज के आधुनिक मध्यमवर्गीय यौवन की यही समस्या है कि उसको सच्चे स्वरूप में समझने का कोई प्रयास नहीं करता। इस समय का मध्यवर्ग बड़ी ही सतर्कता से, जीवन में आगे

उन्नति करता हुआ दिखाई देता है। इस वजह से आपसी अन्तराल भी बढ़ता रहता है। यहाँ पर पृथ्वी भी समाज को नहीं छोड़ पाता।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने गुणवंती के पात्र विधान को सहज रूप से उभारने की कोशिश की है। गुणवंती का पति नपुंसक है। इस वजह से गुणवंती अपनी शारीरिक भूख को संतोषने के लिए मगन के साथ संबंध रखती है। उसकी पहली पुत्री भी उसे अपने देवर से ही प्राप्त थी। जब दूसरी बार वह सगर्भा होती है तब उसका पति उसे घर से बाहर निकाल देता है। उस समय पृथ्वी ही उसे आश्रय स्थान देता है। गुणवंती के साथ भी वह अपना संबंध स्थापित नहीं कर पाता क्योंकि 'गुणवंती का साईड फेस उसे मम्मी के जैसा लगता है।''[138] इस कारण वह गुणवंती से भी मित्र भावना नहीं रखता है। अंत में वह अपनी जिंदगी चिड़िया और तोते के साथ जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार उपन्यास में मध्यमवर्गीय युवक की मनःस्थिति का वर्णन किया गया है।

अमृता (1965) – रमेश ओझा

प्रस्तुत उपन्यास 'अमृता' में मध्यमवर्गीय दशा और वैवाहिक विडम्बनाओं का अच्छा चित्रण है। प्रस्तुत उपन्यास में अमृता, उदयन और अनिकेत तीन प्रमुख पात्र हैं। तीनों पात्रों के जीवन के दृष्टिकोण अलग–अलग दिखाये गये हैं। प्रस्तुत उपन्यास में प्रणय त्रिकोण दिखाया गया है। जिसमें स्त्री के प्रेम को प्राप्त करने के लिए दो पुरुष पात्र और उसमें से किसी को पसंद करना यह स्त्री की विडम्बना। इस प्रश्नार्थ के आसपास सम्पूर्ण उपन्यास का कथावस्तु रचा गया है।

रेवा तारां वहेतां वारि – श्री चंद्रवद शुक्ल

'रेवा तारां वहेतां वारि' प्रस्तुत उपन्यास श्री चंद्रवदन शुक्ल के द्वारा लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास में मध्यमवर्गीय समाज के प्रणय त्रिकोण एवम् उसके माध्यम से प्रवर्तमान विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में वाचस्पति–उमा–विशाखा के माध्यम से प्रणय–त्रिकोण दर्शाया गया है। उमा का प्रेम प्राप्त करने के लिए प्रो. प्रफुल्लभानु आकाश–पाताल एक कर देता है। इस प्रकार दूसरा प्रणय त्रिकोण विशाखा–निहारेन्द्र–प्रफुल्लभानु के माध्यम से

बनता हुआ दिखाया गया है।

वांसनो अंकुर – धीरूबहेन पटेल

धीरूबहेन पटेल कृत 'वांसनो अंकुर' उपन्यास के अंतर्गत दिखाया गया है कि युवावर्ग किसी का भी उपकार पसंद नहीं करता। पिता के बार–बार दादाजी के नाम लेने से केशव चिढ़ जाता है। वह मन ही मन सोचता हैः ''यह सब सुनते–सुनते कान पक गये हैं, दिमाग थक गया है। केशव कितनी बार सोचता है वह पैदा ही न हुआ होता तो अच्छा होता।''[139]

रमणीकलाल और केशव के बीच मध्यमवर्गीय युवा पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी के बीच का द्वन्द्व दिखाया गया है। रमणीकलाल को हर एक काम निश्चित समय में पूर्ण करना पसंद है। नियमों में बंधे हुए एवम् पुरानी मान्यताओं, बातों एवम् अंधश्रद्धा में जकड़े हुए हैं। जो केशव को बिलकुल पसंद नहीं। हर बात पर वह दादाजी से द्वन्द्व करना चाहता है। कॉलेज की फीस भरने के बावजूद भी केशव कॉलेज जाकर पढ़ना नहीं चाहता। वह रमणीकलाल की हर बात का विरोध करना चाहता है। ''केशव नहीं पढ़ेगा। दुनिया में किसी ने भी उनकी बात को नहीं काटा, केशव काटेगा।''

केशव अपने मन की सारी बातें, कड़वाहट दादाजी के सामने उंडेलना चाहता है, लेकिन दादाजी के रुढ़िचुस्त स्वभाव के कारण ऐसा करने से डरता है।

प्रस्तुत उपन्यास में विधवा समस्या भी विमला के माध्यम से प्रकट हुई है। दादाजी के रुढ़िचुस्त स्वभाव के कारण से उसका पुनःविवाह असंभव है। वह अपने पिताजी रमणिकलाल के बंगले की चारदिवारी में घुटन महसूस करती है। उसको भी रमणिकलाल के बनाये हुए नियमों का पालन करना पड़ता है। ''उस घर में किसी भी जात का धर्म ध्यान नहीं हो सकता था।''[140] इस वजह से केशव जब विमला मौसी के रूम में जाता है तब वह संकोच एवम् डर वश गुटको को छुपा देती है। यहाँ पर मध्यमवर्गीय मानसिक द्वन्द्व देखने को मिलता है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में मध्यमवर्गीय एवम् उच्च मध्यमवर्गीय परिवार में युवा पीढ़ी एवम् पुरानी पीढ़ी के बीच के मत–मतांतर, आपसी टकराव, अहंकारवृत्ति, मानसिक अंतर्द्वन्द्व आदि देखने को मिलता है।

चल–अचल (1969) – हसित बूच

प्रस्तुत उपन्यास हसित बूच द्वारा रचित है। इसमें चल–अचल के अंतर्गत नागर कुटुंब की कथा को वर्णित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में मध्यमवर्गीय समाज में प्रवर्तमान लग्न–विच्छेद, संत्रास, घूटन, निराशावाद, गृह–क्लेष आदि दिखाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में नायक अक्षय गृहत्याग करता है। नायिका कृष्णा के लग्न विच्छेद के कारण परिवार में उसके माध्यम से प्रवर्तमान विभिन्न समस्याओं को दिखाया गया है।

छिन्न पत्र – सुरेश जोशी

'सुरेश जोशी ने 'छिन्न पत्र' उपन्यास के माध्यम से गुजराती उपन्यास को एक नई दिशा, नया मोड़ दिया।''[141] प्रस्तुत नवलकथा दो खण्डों में विभाजित है। पहला खण्ड अजय की डायरी या स्वयोक्ति के रूप में है, और दूसरा खण्ड परिशिष्ट रूप में है, जिसमें माला को केन्द्रबिंदु में रखकर लिखा गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में मध्यमवर्गीय परिवारों में स्त्री–पुरुष के बीच सहज रूप से पाये जाने वाले दैहिक सम्बन्ध, प्रेम–सम्बन्ध, प्रणय–त्रिकोण आदि को दर्शाया गया है। ''छिन्न पत्र तो प्रेम–मिमांसा ही है। मनुष्य प्रेम के अनेक प्रकारों को इस कथा में चित्रित किया गया है।''[142] उपन्यास का नायक अजय एक सर्जक है। वह संवेदनशील स्वभाव का है। अजय माला को पसंद करता है, लीला नाम की दूसरी युवती अजय को पसंद करती है। माला पर अधिकार जताने वाले अमल, अरूण, अशोक नामक दूसरे युवक भी हैं। अजय माला के साथ प्रेम संबंध स्थापित करता है। माला का अहंकार उसे अजय के साथ ऐक्य स्थापित करने से रोकता है। इस वजह से अजय अपनी डायरी में लिखता हैः ''बाहर की एक काया के पीछे दूसरी मर्म काया छिपी रहती है। वह सबको दिखाई नहीं देती लेकिन मैं तुम्हारी मर्मकाया को बराबर हासिल कर चुका हूँ।''[143] अशोक, अरुण आदि मित्र एक दिन अजय के घर जाते हैं। वहाँ अशोक माला के साथ दैहिक सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार यहाँ पर मध्यमवर्गीय जीवन में पनपता शारीरिक सम्बन्ध का चित्रण किया है। अजय और माला का संबंध अपनी अलग–अलग स्वाभाविक प्रकृति के कारण बिखर जाता है। मध्यमवर्गीय युवा–पीढ़ी अपने अहंकार की भावना के कारण आपसी सम्बन्धों

को दाँव पर लगा देते हैं जो अजय और माला के संबंध से ज्ञात होता है। अंत में अजय मृत्यु की कामना करता हुआ स्मृतिशेष होकर माला के विच्छिन्न चित्त में जिंदा रहता है। छिन्नपत्र के बारे में सुरेश जोशी का कहना हैः ''उसके बावजूद भी मुझे ऐसा लगता है कि ''छिन्नपत्र' का विषय ही है कि यह जो अपना संसार है, उसमें सबसे प्रबल अपनी लालसा है, वह प्रेम की है, फिर भी इस व्यवस्था में प्रेम शक्य नहीं है।''[144] प्रस्तुत उपन्यास का नायक संवेदना द्वारा जड़भरत समाज के सामने जूझता है। इस कारण वह समाज से भिन्न ही दिखाई देता है।

शीमळानां फूल – धीरूबहेन पटेल

प्रस्तुत उपन्यास के अंतर्गत समाज एवम् स्वजन द्वारा निश्चित किए गए रीत–रिवाजों को छोड़कर अपनी मर्जी के मुताबिक जीवन व्यतित करना चाहती है, लेकिन उसमें असफलता प्राप्त होकर वास्तविकता से रूबरू होती है। इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय नारी की वेदना कथा है। ''संसार में भी सबकुछ रुटिन के मुताबिक ही चलता है, खुद जरा–सी अपनी मर्जी के मुताबिक चलने गई तो....''[145] यहाँ पर रन्ना को बहुत कुछ सहना पड़ता है। बीस साल के दाम्पत्य जीवन के बाद भी सहजीवन में संवादिता स्थापित न होने के कारण वह गृहत्याग करती है।

रन्ना को अपने जीवन में मिसिस विमल मेहता की तरह पहचाना जाना असह्य लगता है। इस परिस्थिति से संत्रस्त होकर गृहत्याग करती है। विमल उसे ऐसा न करने के लिए समझाता है, वहाँ से कथा का प्रारंभ होता है। विमल भी इस परिस्थिति के लिए उतना ही जिम्मेदार है। वह भी अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए अपना एकाकीपन को दूर करने के लिए रन्ना को हमेशा अपने साथ रखकर मित्रों के साथ फिल्म, पार्टी में जाता रहता है। इन सारी बातों से रन्ना संत्रास का अनुभव करती है। विमल उससे अनजान रहता है। इस बात का दुःख रन्ना को हमेशा कचोटता है। ''पति–पत्नी के बीच का मूक और मानसिक संघर्ष, उस संघर्ष से गृहत्याग और पुनरागमन, प्रथम दृष्टि से कथानक सीधा–सादा लगता है। लेकिन लेखिका ने ऐसे सीधे कथानक को जो कलारूप दिया है, वह अपने आस्वाद और अभ्यास का विषय बना हुआ है।''[146]

गृहत्याग करने के बाद रन्ना अपनी सहेली उमा के वहाँ जाती है। लेकिन वहाँ भी मन–मेल न होने के कारण मतभेद होता है। वहाँ से पँढरपुर चली जाती है। इस समय के दौरान

पति विमल की स्मृति ताज़ा हो उठती है। मध्यमवर्गीय नारी की तरह अनुभव भी करती है कि पति के बिना असलामत है। यहाँ पर रन्ना की विच्छिन्न मनोदशा का आलेखन किया है। रन्ना की मनोस्थिति ठीक उस मध्यमवर्गीय नारी की तरह है जो आवेश में आकर दृढ़ निर्णय तो कर लेती है, लेकिन उस पर अड़िग नहीं रह सकती। प्रस्तुत उपन्यास में अन्य युगलों की कथा को भी लिया गया है। जैसे सुरुभाई और लीलीभाभी, मंजु और निशीथ, उमा और ओमी। मध्यमवर्गीय परिवारों में झंखना (इच्छा) और जीवन की नग्न वास्तविकता के बीच के संघर्ष को लेखक ने दर्शाया है।

उमा का पति अपने विचित्र स्वभाव के कारण आत्महत्या करता है, उसी वेदना के साथ उमा अपना जीवन व्यतीत करती हुई ओमी के साथ संबंध स्थापित करती है। पंढरपुर में रहते हुए रन्ना विमल से इतनी निकट आती है जो सालों रहते हुए भी नहीं आई थी। ऐसा प्रतीत होते ही वह अपने घर वापस आती है। लेकिन वहाँ पर विमल पल्लवी नामक युवती के साथ अपना एकांतपन व्यतीत करताहै। विमल मन से तो रन्ना को चाहता है, इसलिए उसको पूरी दरकार के साथ शर्मा के गेस्टहाउस में छोड़ने जाता है। अकस्मात की घटना से दोनों के बीच मनमेल की संभावना पैदा होती है, लेकिन दोनों के बीच अविश्वास के कारण अभेद दीवार तो रहती ही है। प्रस्तुत उपन्यास ''स्त्री संबंध के संदर्भ में छल, समाधान, हठाग्रह, कुटुंबत्याग और आत्मप्रताड़ना के इन प्रसंगों के अंतर्गत मौजूद सामाजिक वास्तविक संवेदना का एक अनोखा स्पुट रचता है।''[147]

इस प्रकार 'शीमळाना फूल' उपन्यास के अंतर्गत मध्यमवर्गीय नारी की वेदना है।

श्रावणी – शिवकुमार जोशी

'श्रावणी' उपन्यास में मध्यमवर्गीय समाज में पति और पत्नी के बीच के वैचारिक मतभेद को दर्शाया गया है। इस उपन्यास में आधुनिक नायक तथा नायिका द्वारा स्थापित मूल्यों और नवीनतम मूल्यों के बीच का संघर्ष को दिखाया गया है। नायक परीक्षित बुद्धिवादी है, उसे धर्म भावना रुचिकर नहीं लगती। उसको धार्मिकता एक तरह की घेलछा ही लगती है। वह अपनी पत्नी से कहता हैः ''बुद्धि जिसका अस्वीकार करती हो, ऐसा धर्मकार्य करना ही चाहिए, ऐसा

थोड़े ही है?''[148] प्रस्तुत उपन्यास में दोनों की भावनाओं का संघर्ष दिखाई देता है। नायिका विनोदिनी धार्मिक मनोवृत्तिवाली और भावुक है। भजनकीर्तन की तरफ अनुराग है। जबकि परीक्षित को इन बातों से बहुत ही चीढ़ थी। सम्पूर्ण उपन्यास में दोनों के बीच का संघर्ष दिखाया गया है। अद्यतन युग के मानस को उन्होंने समभाव की दृष्टि से आलेखित किया है। श्रद्धा के बदले बुद्धि के स्तर से सबको नापने की वृत्ति के जो परिणाम आते हैं, उसको दर्शाया है। जिसके कारण विनोदिनी और परीक्षित का लग्नज़ीवन टूटन के कगार पर खड़ा है। यहाँ तक कि विनोदिनी आत्महत्या को पसंद करती है। यहाँ पर मध्यमवर्गीय निराशावादी दृष्टिकोण देखने को मिलता है।

उनकी दूसरी नवलकथा 'आभ रूवे एनी नवलख धारे' के अंतर्गत उच्च मध्यमवर्गीय अशेष और मध्यमवर्गीय काजल के बीच के मूल्य संघर्षो को दिखाया गया है। आधुनिक युवक–युवती के बीच बढ़ते हुए दैहिक सम्बन्धों को दर्शन, चांदनी और अशेष के माध्यम से दिखाया है। देह संबंध में राचते हुएं युवक–यवतियों के चित्र दर्शाये हैं। नायक अशेष के जीवन के कोई खास मूल्य नहीं हैं। काजल और नायक की मुलाकात ट्रेन में हुई थी। काजल जब शादी का प्रस्ताव रखती है तब वह काजल को कहता हैः ''मुझे लगता है कि आपस में किसी प्रकार की गाँठ बाँध लेने के बजाय हम एक–दूसरे केसाहचर्य का आनंद भोगे, तो दिक्कत है?''[149] यहाँ पर मध्यमवर्गीय समाज में लग्न के बंधन के अलावा मुक्त दैहिक सम्बन्ध का जो मानस व्यापक रूप से फैला है उसका प्रतिनिधि अशेष है।

गुजराती उपन्यास में मध्यमवर्गीय नारी की विभिन्न समस्याओं को दर्शाया है। जैसे कुन्दनिका कापड़िया कृत 'सात पगलां आकाशमां', इला आरब कृत 'बत्रीस पूतळीनी वेदना', वर्षा अडालजा कृत 'खरी पडेलो टहुको', 'माटीनुं घर', बिंदु भट्ट कृत 'मीरां याज्ञिकनी डायरी', भगवती शर्मा कृत 'समयद्वीप', ध्रुव भट्ट कृत 'तत्वमसि', अशोकपुरी गोस्वामी कृत 'कूवो', हसमुख बाराड़ी कृत 'गांधारी', जोसेफ मेकवान कृत 'मनखानी मिरात', योगेश जोशी कृत 'सामुद्री' और 'जीवतर' आदि उपन्यासों का समावेश होता है।

सात पगलां आकाशमां – कुन्दनिका कापड़िया

कुन्दनिका कापड़िया कृत 'सात पगलां आकाशमां' के अंतर्गत नायिका परंपरागत सामाजिक

मान्यताओं के सामने आवाज़ उठाकर घर और समाज में अपना स्थान निश्चित करना चाहती है। जो घर और परिवार के लिए वह समर्पित है, वहाँ उसके लिए अधिकारों की मर्यादा है। आँखों से न दिखते हे कितने अन्यायों का भोग बनती है। अपने जीवन का छोटा–सा निर्णय भी वह खुद स्वतंत्र नहीं ले सकती। और अगर ऐसा करना चाहती भी है, तो अनेक प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते हैं। उसके पास उत्तर माँगने का पुरुष को, परिवारवालों को और सम्पूर्ण समाज को अबाधित अधिकार है। प्रस्तुत उपन्यास में उसके अलावा स्त्रियों क़ो भुगतने पड़ते अन्यायों का भी वर्णन है। विधवा स्त्री के साथ समाज का भद्दा व्यवहार, नौकरी करती हुई महिलाओं के साथ अमान्य वर्तन, बलात्कार का भोग बनी हुई युवती के प्रति अभिगम इत्यादि प्रश्नों को इसके इर्द–गिर्द बुना गया है।

''सात पगलां... की नायिका पति, परिवार से अलग खुद की अभिलाषाओं को साकार करने की दिशा में आगे बढ़ती है।''[150]

खरी पडेलो टहुको – वर्षा अडालजा

वर्षा अडालजा कृत 'खरी पडेलो टहुको' में दिखाया गया है कि वृंदा अपने जीवन में भौतिक सुख को महत्व नहीं देती इस वजह से अकेलेपन का अनुभव करती है। उसके जीवन में भी विविध समस्याएँ पैदा होती हैं। वृंदा और अनंत का लग्न जीवन सुखद बन सकता है, लेकिन दोनों के विचारों में मतभेद है। अनंत धन के पीछे भागना उसका मकसद है, जबकि वृंदा की अपेक्षा अलग है। वृंदा और अनंत का पुत्र भी भौतिक सुख के पीछे भागता है। इस वजह से वह जीवन में एकलता का अनुभव करती है। उसी समय वह सगर्भा होती है। उसे पुत्री श्यामा का जन्म होता है, लेकिन वह 'सेरीब्रल पाल्सी' से पीड़ित होती है। सामान्य बाल की तरह उसका विकास संभव नहीं है। इस कड़वे घूंट को वृंदा पी लेती है और अपना पूरा जीवन श्यामा को अपना जीवन सह्य लगे इस प्रयास में लगी रहती है।

''वर्षा अडालजा कृत 'माटीनुं घर' के अंतर्गत दिखाया गया है कि जो नारी सहजीवन के अनेक सपने लेकर नये घर में प्रवेश करती है, वैसी हतभागी स्त्रियों को कितनी यातनाओं से गुजरना पड़ता है।''[151] ''स्त्री के लिए घर सुख–शांति, सलामती और आत्मगौरव की रक्षा का

प्रतीक है। विधि की वक्रता यह है कि कभी यह घर की स्त्री को निगल जाता है। उसके सत्व को खा जाता है और जहाँ से सबकुछ मिलने की आशा होती है, वहाँ पर वह सर्वस्व गँवा देती है।''[152]

बिंदु भट्ट कृत 'मीरां याज्ञिकनी डायरी' के अंतर्गत मध्यमवर्गीय नारी में शारीरिक कमी के कारण पनपते सजातीय संबंध, उसकी एकलता, शरीर की आवश्यकताओं और आवेगों को बिना झिझक दर्शाया है।

आंधळी गली – धीरूबहेन पटेल

धीरुबहेन पटेल कृत 'आंधळी गली' चरित्र–निर्माण की दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें मध्यमवर्गीय युवक के अन्तर्द्वन्द्व, मनोमंथन को स्पष्टरूप से दिखाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में विशाल घर में रहती हुई नायिका नवदंपति को अपना कमरा किराए पर देती है। उसके लिए योग्य जीवन–साथी पसंद करने के लिए भी वह दंपति प्रयत्न करते हैं। आखिर में उसके योग्य पुरुष भी मिल जाता है। लेकिन अंत में नायिका उसे मना कर देती है। उसका मानसिक द्वंद्व, एकलता से भरा जीवन, अपने से ही ठेस, दुःख दिखाया गया है। उसके पीठे उसके जीवन में घटित अमान्य घटना है। शादी करने के कुछ दिन पहले ही उसे पता चलता है कि उसके पिता का किसी युवती के साथ संबंध था जिसके बारे में उसे कभी पता नहीं था। पिता के साथ नायिका का संबंध उष्मा और प्रेमपूर्ण था। उसे अपने पिताजी के जीवन से संबंधित प्रत्येक जानकारी थी, ऐसा वह मानती थी। इस संबंध में संदेह का कोई स्थान नहीं था। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि उसके पिता उससे इतनी बड़ी बात छिपा रखेंगे। पिता के द्वारा हुए विश्वासघात को नायिका सह नहीं पाती। ''विश्वास टूटने और खुद में पिता ने पूरा भरोसा न रखने की वेदना नायिका को अकेले जिंदगी जीने का निर्णय लेने की प्रेरणा देती है।''[153] प्रस्तुत उपन्यास में नायिका को अनुभव होता है कि जिस पुरुष के साथ इतने साल गुजारे, सुख और दुख बाँटे उसी पुरुष को वह नहीं जान पायी तो अनजान पुरुष को अपनाना उसे उचित नहीं लगता। नायिका को एकलता और साथीहीन जीवन गुजारना पसंद है, लोकिन विश्वासघात नहीं। मध्यमवर्गीय स्त्री आज के जमाने में इतनी सचेत हो गई है कि उसे जिन्दगी अकेले गुजारना पसंद

है लेकिन धोखा खाना नहीं।

'कावेरी' और 'दर्पणलोक' दो उपन्यासों में भी विधवा समस्या को प्रस्तुत किया गया है। कुन्दनिका कापड़िया कृत 'न्याय' नामक उपन्यास में मध्यमवर्गीय समाज में प्रेमलग्न में पति और पत्नी के बीच अहंकार और अपनेपन के कारण खड़े होते हुए विसंवाद का वास्तविक चित्र है। शादी केवल प्रेम पर ही नहीं टिकती, लेकिन समझदारी और परस्पर आदर भी जरुरी है, जो आज के समाज में कम दिखाई देते हैं। ''आर्थिक पराधीनता की जकड़ में से मुक्त हुई स्त्री अब घर को त्यागने जैसे निर्णय त्वरित ले सकती है। यह बाबत यहाँ सूचित है।''[154]

''वर्षा अडालजा और इला आरब महेता ने रोज के घटनाक्रम में अटकी हुई और उस परिश्रम में जीवन का आनंद भूल जाती उच्च मध्यमवर्ग की गृहिणीओं को केन्द्र में रखते हुए विविध दृष्टिकोण से उपन्यास को ठीक प्रमाण में रचा है।''[155]

इस प्रकार गुजराती के उपन्यासों में भी मध्यमवर्गीय जीवन की निरसता, टूटन, कृत्रिमता, कटुता और दुःख के संकट से जीवन गुजारते दिखाया है। गुजराती उपन्यासों में भी हिन्दी उपन्यासों की तरह शिक्षित मध्यमवर्गीय पात्रों की द्वन्द्वात्मक स्थिति और वैवाहिक जीवन की विषमताओं को अभिव्यक्ति मिलती है।

* * * * *

संदर्भ सूचि

1. डॉ. ममता – साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : बदलता व्यक्ति : भूमिका
2. वही– पृ. 2
3. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : नई कविता का अवसान कब, क्यों और कैसे – 'परख', 1988 – पृ. 8
4. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : आज का हिन्दी उपन्यास, पृ. 5
5. डॉ. इन्दीवर : समकालीन कथा साहित्य में शिल्प और जीवन–दृष्टि, प्रवेशांक, पृ. 25
6. डॉ. विमला सिंह : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में भारतीय युवा का स्वरूप, पृ. 12
7. डॉ. ममता : साठोत्तर हिन्दी उपन्यास : बदलता व्यक्ति, पृ. 10 (भूमिका)
8. पी.के. देसाई : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ. 150
9. लक्ष्मीकान्त वर्मा : प्रेमचन्दोत्तर काल : नये धरातल, आलोचना–13, पृ. 139
10. डॉ. अमरप्रसाद गणेश प्रसाद जायस्वाल – हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 36
11. डॉ. हेमराज निर्मम – हिन्दी उपन्यासों में मध्यमवर्ग, पृ. 18
12. अतुलवीर अरोड़ा, पृ. 278

    इस प्रकृति की सृष्टि प्रायः इन उपन्यासों में उपलब्ध होती है।

    उषा प्रियंवदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (1961), मोहन राकेश का 'अंधेरे बन्द कमरे' (1961), नरेश मेहता का 'यह पथ बंधु था' (1962), निर्मल वर्मा का 'वे दिन' (1964), रमेश बक्षी का 'अठारह सूरज के पौधे' (1965), अमृतलाल नागर का 'अमृत और विष', श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', भगवती बाबू का 'सबहिं नचावत राम गोंसाई' (1970), आधुनिकता के संदर्भ में, आज का हिन्दी उपन्यास (1936–1968).
13. डॉ. हेमराज निर्मम – हिन्दी उपन्यासों में मध्यमवर्ग– वही – पृ. 212
14. श्रीमती मीना पिंपलापुरे – मोहन राकेश का नारी संसार – पृ. 91
15. सूफी उल्लाह अंसारी – मोहन राकेश का उपन्यास शिल्प – पृ. 99
16. प्रकाशचन्द्र गुप्ता – आज का हिन्दी उपन्यास, पृ. 144
17. सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, पृ. 557

18. बीना श्रीवास्तव – हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास, पृ. 557

19. भूपसिंह भूपेन्द्र – मध्यमवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास – पृ. 78

20. घनश्याम 'मधुप' – हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 180

21. उषा प्रियंवदा – रुकोगी नहीं राधिका – पृ. 61

22. घनश्याम 'मधुप' – हिन्दी लघु उपन्यास – पृ. 181

23. उषा प्रियंवदा – रुकोगी नहीं राधिका – पृ. 23

24. वही – पृ. 152

25. घनश्याम मधुप – हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 180

26. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ, पृ. 127

27. घनश्याम मधुप – हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 180

28. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ, पृ. 126

29. उषा प्रियंवदा – रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 111

30. अमृतलाल नागर – अमृत और विष, पृ. 97

31. डॉ. वासिष्ठ, डॉ. बंगडी – उपन्यासकार अमृतलाल नागर, पृ. 63

32. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ, पृ. 105

33. वही – पृ. 105

34. वही – पृ. 99

35. घनश्याम मधुप – हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 283

36. डॉ. रामविलास शर्मा – साहित्य, स्थायी मूल्य और मूल्यांकन, पृ. 89

37. पुष्पा कोछड़ : हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास, पृ. 123

38. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ, पृ. 101

39. जयश्री बारहट्टे – हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक, पृ. 189

40. मोहन राकेश – न आनेवाला कल, पृ. 40

41. वही – पृ. 22

42. डॉ. चमनलाल गुप्त : मोहन राकेश के कथा साहित्य में मानवीय संबंध, पृ. 66

43. सूफी उल्लाह अंसारी : मोहन राकेश का उपन्यास शिल्प, पृ. 13
44. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास द्वितीय संस्करण, पृ. 356
45. गिरिधर गोपाल : कान्दली और कुहासे, पृ. 177
46. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : समकालीन साहित्य एक नयी दृष्टि, पृ. 74
47. डॉ. अमर प्रशाद गणेश जायस्वाल : हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 170
48. गिरिधर गोपाल : कान्दली और कुहासे, पृ. 134
49. ममता – साठोत्तर हिन्दी उपन्यास : बदलता व्यक्ति, पृ.च 148
50. घनश्याम 'मधुप' – हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 178
51. वही, पृ. 169
52. राजकमल चौधरी – मछली मरी हुई, पृ. 11
53. वही – पृ. 121–124
54. घनश्याम 'मधुप' : हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 186
55. सूफी उल्लाह अंसारी : मोहन राकेश का उपन्यास शिल्प, पृ. 88
56. अमर प्रसाद गणेश प्रसाद जायस्वाल : हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 249–250
57. वही – पृ. 241
58. लक्ष्मीकान्त वर्मा – प्रेमचन्दोत्तर काल : नये धरातल, आलोचना–13, पृ.97
59. त्रिभुवनसिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ. 135
60. डॉ. घनश्याम 'मधुप' – हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 197
61. वही – पृ. 190
62. सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, पृ. 526–527
63. परमानन्द श्रीवास्तव – उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ. 194–195
64. इन्द्रनाथ मदान – हिन्दी उपनयास : नयी दृष्टि, पृ. 100
65. ममता कालिया : बेघर, पृ. 98
66. वही – पृ. 289
67. वही – पृ. 147

68. परमानन्द श्रीवास्तव : उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ. 157

69. ममता कालिया : बेघर, पृ. 197

70. इन्द्रनाथ मदान : समकालीन नई दृष्टि, पृ. 77

71. वही – पृ. 100

72. ममता कालिया : बेघर, पृ. 72

73. विजयमोहन सिंह : आलोचना (जनवरी–71), पृ. 85

74. मन्नू भण्डारी : आपका बण्टी, पृ. 8

75. वही – पृ. 75

76. वही – पृ. 122

77. डॉ. हेमचन्द्र जैन – प्रकर – मई–जून, 1972, पृ. 46

78. डॉ. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास, पृ. 376

79. डॉ. राम विनोद सिंह : आठवां दशक हिन्दी उपन्यास, पृ. 13

80. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास, पृ. 289

81. डॉ. बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 174

82. डॉ. कुँवरपालसिंह–हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृ. 214

83. यशपाल – तेरी मेरी उसकी बात, पृ. 634

84. सं. रामन्यास पाण्डेय – यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 26

85. सुरेश सिन्हा : पत्थरों का शहर

86. वही

87. वही

88. वही

89. वही– पृ. 238

90. वही– पृ. 285

91. वही

92. वही, पृ. 274

93. पुरुषोत्तम दुबे : व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. 390
94. अमर प्रसाद गणेश प्रसाद : हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 281
95. वही - पृ. 281
96. वही - पृ. 285
97. शिवानी : 'गैंडा' - पृ. 37
98. अमर प्रसाद गणेश प्रसाद जायस्वाल : हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 286
99. वही, पृ. 24
100. शिवानी - गैंडा - पृ. 24
101. वही - पृ. 34
102. गिरिराज किशोर : चिड़ियाघर, पृ. 105
103. डॉ.पुरुषोत्तम दुबे : व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. 377
104. ममता : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : बदलता व्यक्ति, पृ. 167
105. ओमप्रकाश दीपक : कुछ जिन्दगीयाँ बेमतलब, पृ. 101
106. रामदरश मिश्र : पानी के प्राचीर, पृ. 122
107. वही, पृ. 170
108. डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ. 51
109. रामविनोद सिंह : आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास, पृ. 31
110. वही - पृ. 34-35
111. वही - पृ. 41
112. वही - पृ. 41
113. वही - पृ. 41
114. वही - पृ. 42
115. श्रीकांत वर्मा - दूसरी बार - पृ. 22
116. वही - पृ. 22,23
117. श्री प्रदीप शर्मा : हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान, पृ. 369

118. वही – पृ. 369

119. श्रीकांत वर्मा : दूसरी बार, पृ. 80

120. वही – पृ. 132

121. डॉ. प्रदीप शर्मा – हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान, पृ. 370

122. चन्द्रकांता : ऐलान गली जिंदा है, अपनी बात – आपके साथ

123. डॉ. पांडुरंग पाटील और डॉ. गिरीश काशिद – नवम् दशक के आँचलिक उपन्यास, पृ. 75

124. वही – पृ. 77

125. चंद्रकांता : एलान गली जिंदा है – पृ. 195

126. चंद्रकांता : अपनी बात आपके साथ

127. चंद्रकांता : ऐलान गली जिंदा है, पृ. 157,158

128. डॉ. पांडुरंग पाटील और डॉ. गिरीश काशिद – नवम् दशक के आंचलिक उपन्यास, पृ. 80

129. वही – पृ. 77

130. डॉ. रामविनोद सिंह : नौंवे दशक के हिन्दी उपन्यास, पृ. 134

131. वसुबेन त्रिवेदी – नवलकथा : स्वरूप और विकास

132. डॉ. विजय शास्त्री : गुजरातनां भाषा साहित्य पर आधुनिकीकरणनो प्रभाव, पृ. 349

133. अेंजन – पृ. 274

134. विनोद जोशी : धुम्मस, पृ. 23

135. बाबू दावलपुरा, नरेश वेद – गुजराती कथा विश्व : नवलकथा, पृ. 252

136. वही – पृ. 269

137. राजीव पटेल – झंझा

138. राजीव पटेल – झंझा, पृ. 156

139. धीरुबहेन पटेल : वांसनो अंकुर, पृ. 3

140. वही

141. शिरीष पंचाल – नवलकथा, पृ. 109

142. वही – पृ. 109

143. सुरेश जोशी, छिन्न पत्र

144. वही,पृ. 173

145. बाबु दावलपुरा, नरेश वेद – गुजराती कथा विश्व, पृ. 305

146. वही – पृ. 307

147. वही – पृ. 308

148. शिवकुमार जोशी : श्रावणी, पृ. 109

149. शिवकुमार जोशी : 'आभ रुअे एनी नवलख धारे', पृ. 262, भाग–1

150. हिमांशी शेलत : गुजराती कथा साहित्यमां नारी चेतना, पृ. 20

151. वही – पृ. 21

152. वही – पृ. 21

153. वही – पृ. 28

154. वही – पृ. 37

155. वही – पृ. 38

* * * * *